Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

शैलेश मटियानी

की

दलित-संदर्भ

से

युक्त

कहानियाँ

प्रास्ताविक :

दलित-वर्ग और निम्न-वर्ग के प्रति एक प्रकार की प्रतिबद्धता और सामाजिक-सरोकार की भावना शैलेश मटियानीजी के साहित्य में प्रारंभ से ही उपलब्ध होती है। इसे ही लेखक अपना ''वाल्मीकि-धर्म'' कहता है। लेखक या कवि स्वयं दलित व शोषित न भी रहा हो, तो भी उसे उनका पक्षधर होना ही चाहिए, यहीं मानव-धर्म का तकाजा है और यह बात हम हर दौर और देश के मानवतावादी साहित्यकारों और कलाकारों में लक्षित करते हैं। हिन्दी कथा-साहित्य में शैलेश मटियानीजी का जो स्थान है, और इधर इनकी मृत्यु के उपरान्त (२४ अप्रेल, सन् २००१) हिन्दी कथा-सहित्य के आलोचक व विद्वान उनके संदर्भ में जो अपनी राय जाहिर कर रहे हैं, उससे एक बात तो निश्चित तौर पर साबित हो रही है कि मटियानी प्रेमचन्द के बाद के एक सशक्त कथाकार है। ''पहाड़'' के संपादक डॉ. शेखर पाठक के शब्दों में कहें तो- शैलेश का मतलब हिन्दी का एक सर्वाधिक अनुभव संपन्न रचनाकार। मूलत: कथाकार कहानी-विधा को एक भिन्न प्रकार की ताजगी देने वाला। कुछ कालजयी कहानियों को लिखने वाला। ... एक ऐसा

रचनाकार, जिसे पाठकों ने सम्मान दिया, पर आलोचकों ने नहीं। जिसे छापने को प्रकाशकों में १९५८ से ही उत्साह था, पर सरकारी संस्थाओं में नहीं। शैलेश के मायने विडम्बना, विद्रोह और विवादों के बीच सत्तर साल तक जीवित रह सकने वाला मनुष्य भी है और विवशता, विकलता तथा विक्षिप्तता से घिर कर अत्यंत असंतोष में दिवंगत हिन्दी लेखक भी है और अंततः शैलेश के मायने एक ऐसे रचनाकार से है, जिसका रास्ता चुनने से हर कोई कतराएगा, लेकिन हर कोई चाहेगा कि कोई तो ऐसा रास्ता चुनें।[१]
ऊपर कुछ कालजयी कहानियों का जिक्र हुआ है, वे वहीं कहानियां हैं, जिनका हमारे प्रबंध से सीधा वास्ता है। विवशता, विकलता और विडम्बना लेखक में ही नहीं इनके पात्रों में भी है। यहाँ हम उनकी कुछ ऐसी कहानियों को ले रहे हैं जिनमें दलित-विमर्श या दलित-संदर्भ मिलता है। यहाँ एक बात हम साफ तौर पर करना चाहेंगे कि मटियानीजी में कहीं भी पूर्वाग्रह या दुराग्रह नहीं है। कुछ मामलों में यह खब्ती की सीमा तक लड़ने और उलझने वाला लेखक है, पर मजाल है कि कहानी में कहीं भी कोई लचक या जोल आ जाए। एक कलात्मक तटस्थता का निर्वाह वहां उन्होंने किया है। एक बात और, मटियानी की कहानियों में हम दलित किसको कहें? यह भी एक विचारणीय मुद्दा है। दलित में चमार, भंगी, डोम आदि जाति के लोग तो हैं ही जिन्हें कुमाऊँ प्रदेश में अब वाल्मीकि या शिल्पकार कहते हैं। उनके नाम के पीछे प्रायः ''राम'' शब्द जुड़ता है। इसे भी एक विडम्बना समझना चाहिए कि जो राम ''वर्णाश्रम'' व्यवस्था के पोषक थे, उस व्यवस्था के सर्वाधिक रूप से शिकार ऐसे लोग अपने नाम के पीछे उसे आज भी ढो रहे हैं। यद्यपि यह तर्क दिया जा सकता है कि यह ''राम'' आत्माराम या निरंजन-निराकार-अजन्मा राम है। दूसरे इस अध्याय में हमने कुछ ऐसे पात्र लिए हैं, जो मुंबई जैसे महानगरों की झोंपड़पट्टी में, पाईपों में या फुटपाथों पर रहते हैं और ग्रामीण दलितों से भी गयी-गुजरी जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त है। इन लोगों की जातिगत पहचान खत्म हो चुकी है और कहीं-कहीं तो इंसान

होने का अहसास भी ये खो चुके हैं। इसमें कुछ ऐसे नारी-पात्र भी हैं जो इस दलित-पलित जिन्दगी जीने के बावजूद उनसे जूझ रहे हैं। जिनमें गजब की जिजीविषा और जीवट है और मानवीय मूल्यों और ''मरजाद-रक्षा'' के लिए अपना सब कुछ कई बार प्राण भी-दांव पर लगने के लिए उद्यत है। वैभव - विलासिता की जिन्दगी जीने वाले सेठ और सेठानियों की सापेक्षता में इनको देखें तो पता चले कि वास्तविक दु:ख किसे कहते हैं। इनमें कोढ़ी है, भिखारी है, पाकेटमार है, उठाईगिर है, दादा और खूंखार माफिया है। इनमें एक तरह वेलजी सेठ जैसे नितांत निर्दयी जड़ और जरठ लोग है तो दूसरी तरफ ''एक कोप चाः दो खारी बिस्किट'' के लिए अपने शरीर का सौदा करने वाली 'नसीम' जैसी लड़कियाँ हैं, पर इनके भी भीतर कहीं मानव-मूल्यों के दीयों की जगमगाहट दिख जाती है। इस प्रकार परिवेश की दृष्टि से यदि विचार करें तो एक तरफ कुमाऊँ की पावन-पार्वती भूमि है, तो दूसरी तरफ मुबंई जैसे महानगर तथा इलाहाबाद, दिल्ली, अल्मोड़ा, नैनीताल जैसे नगर और महानगर है। इस अध्याय में हम पहले उन कहानियों को लेंगे जिनमें कुमाऊँ का परिवेश उपलब्ध होता है। दूसरे विभाग में उन कहानियों पर विचार होगा जो मुबंई-दिल्ली जैसे महानगर तथा अन्य ऊपर निर्दिष्ट नगरों के परिवेश तथा उनकी जिन्दगी से संबद्ध है।

(अ) कुमाऊँ के परिवेश पर आधारित कहानियाँ :-

इसमें हमने कुमाऊँ के ग्रामीण परिवेश को लिया है जिसके पात्र बाड़ेछीना, रायछीना, भोगांव, विमलकोट, डुंगरी, बज्यौली आदि कुमाऊँ के ग्रामीण इलाके से है। अल्मोड़ा, नैनीताल आदि भी कुमाऊँ प्रदेश में ही आते हैं, पर अध्ययन की सुविधा के लिए, इन नगरों के परिवेश पर आधृत कहानियों की चर्चा हमने दूसरे विभाग में की है।

(१) घुघुतिया त्यौहार:-

'घुघुतिया त्यौहार' कुमाऊँ के ग्रामीण परिवेश पर आधारित कहानी है। विमलकोट गांव है जिसमें मुख्यत: ठाकुर, ब्राह्मण और शिल्पकारों की बस्ती है। शिल्पकारों की बस्ती को "डुमिया विमलकोट" कहा जाता है। ये सब शिल्पकार ओड़, बढई, लुहार आदि के काम भी करते हैं। इसके अलावा कुछ लोग ठाकुर-पंड़ित-गुसाईयों के यहां "हलिया" का काम भी करते हैं। ये लोग इनके आश्रित होते हैं और उनकी पीढी-दर-पीढी उनके यहां काम करती है। स्त्रियां भी इनके खेतों में और घर के दूसरे कामों में सेवा-चाकरी में लगी रहती हैं। यदि कोई शिल्पकारिन सुंदर व चंचल हुई तो उससे और प्रकार की सेवा ? भी ली जाती है। ये सब काम राजी-राजी-नाराजी उनको करने पड़ते हैं। उनका अभिवादन ही उनकी इस सेवा-वृत्ति को स्पष्ट करने वाला है-"सेवा मानिये"।

नवजागरण काल दलित-जागरण के कारण, स्वाधीनता-संग्राम में उठे कतिपय मुद्दों के कारण, डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के दलितोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण के प्रयत्नों के कारण और सबसे ऊपर डाक्टर साहब के संविधान के कारण इधर दलितों में जो नयी चेतना आयी है, नयी समझ विकसित हुई और उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, जिसके कारण उनकी गरदन कुछ सीधी हुई है, इन सब तथ्यों को यह कहानी रूपायित करती है।

कुमाऊँ प्रदेश में माघ महीने की संक्रान्ति के समय एक त्यौहार मनाया जाता है। ग्रामीण प्रदेशों में उसका विशेष महत्व देखा जाता है। उस त्यौहार का नाम है- "घुघुतिया त्यौहार"। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने इस कहानी का प्रतीकात्मक ढंग से प्रयोग किया है। जैसे गुजरात में "श्राद्ध-पक्ष" के समय "काग-वास", "काग-वास" करके कौओं को बुलाया जाता है और उन्हें खीर-पुड़ी इत्यादि खिलाया जाता है। उसी तरह कुमाऊँ प्रदेश के इस त्यौहार में भी कौओं को खीर-पूड़ी खिलायी जाती है। उसमें जो पुड़ी बनती

है उसे वहाँ की भाषा में "घुघुत" कहते हैं और उस दिन कौओं का महत्व बढ जाता है। प्रस्तुत कहानी का नायक देवराम शिल्पकार है और ठाकुर कल्याणसिंह का हलवाहा है। ठाकुर ने अपनी भतीजा-बहू लक्ष्मी ठाकुराइन की कुछ जमीन पर कब्जा कर लिया है। गांव में अपने रसूल के कारण वह उस जमीन को हथिया लेना चाहता है। लक्ष्मी ठकुराइन इस मामले को गांव की पंचायत में ले गई है। जयगुरुवल्लभ पुरोहित के आंगन में पंचायत बैठने वाली है और जैसा कि इधर एक कानून बना है कि पंचायत में "शिड्युल्ड कास्ट" "अनुसूचित जाति" का एक सदस्य भी बैठता है। बिमलकोट गाँव की पंचायत में देवराम भी एक पंच की हैसियत से बैठता है। और दिनों में ठाकुर की एक पुकार पर उसकी ड्योढी में हाजिर हो जाने वाला देवराम आज कई बार पुकारे जाने पर भी ठाकुर के यहां नहीं पहुंचता है। तब गुस्स्याया हुआ ठाकुर देवराम की बाखली पर पहुंच जाता है। देवराम की पत्नी जसुली कुछ बात संभालने की चेष्टा करती है, पर देवराम तो साफ शब्दों में कह देता है- "खैर, बहाना करना तो बेकार है, हां थोकदार ज्यू। तमाखू की चिलम ही तो गुड़गुड़ा रहा था, कोई हवाई-जहाज तो नहीं उड़ा रहा था। मगर बात असल में ठहरी कि और दिनों की बात अलग हुई, आज की बात अलग।"[२] इस पर थोकदार कल्याणसिंह ठाकुर कुछ व्यंग्य में कहते हैं- "हां, हां, देवराम, आज जरूर अलग बात हुई। आज तू त्यौहार का कौआ जो ठहरा ?[३] कल्याणसिंह के इन शब्दों में ही कहानी का शीर्षक व्यंजित हो जाता है। देवराम के लिए गांव की पंचायत बैठना "घुघुतिया" त्यौहार के कौए के समान ही है। देवराम ठाकुर के व्यंग्य को समझ जाता है और सामने ऐसा ही दुपरदू जवाब ठोक देता है- "यों तो आप हमारे सांई-गुसांई ठहरे, थोकदार ज्यूं। जब कभी आपकी एक पुकार सुनते ही मैं और मेरी घरवाली, दोनों परोसी हुई थाली को छोड़कर भी, आपके काम के लिए दौड़ते रहने वाले हुए। मगर आज मेरा पंचायत में जाने का दिन ठहरा। चार सयाने उधर से किसी आदमी को जरा ढंग से बुलाने को भेजेंगे कि पंच देवराम को बुला

लाओ, तभी मेरा जाना भी अच्छा रहेगा। आपने बेकार ही हांक लगाने की तकलीफ उठायी।''[४]

उस समय उन दोनों के बीच जो वार्तालाप होता है, वह इस प्रकार का है- ''तो अब तो चल तू। अपने घर से यहां तक तो मैं खुद तुझे बुलाने आ गया हूं इससे ज्यादा तुझे और क्या चाहिए ? जरा जल्दी-जल्दी चल अब। थोड़ी देर में तो पंचायत ही बैठ जाने वाली। इस मौके पर तू जरा मेरे पक्ष में ठीक से बोलेगा, तो फिर आगे मैं भी तेरा ध्यान रखूंगा जरुर। ताली तो दोनों हाथों से बजने वाली हुई। ये तो कहावत ही हुई कि आज तेरी, कल मेरी बारी - तभी जगत में निभती यारी।'' और थोकदार कल्याणसिंह के इस कथन पर देवराम जो कहता है, वह कोई ''कौआ'' नहीं ''हंस'' ही कह सकता है, और यही इस कहानी का व्यंग्य भी है कि वास्तविकता में ''हंस'' कौन है और ''कौआ'' कौन है ?[५] एक बात और गौरतलब है कि देवराम कल्याणसिंह का हलिया है। ठाकुर पर ही वह निर्भर है। कोई आत्म-निर्भर व्यक्ति यदि न्याय और विवेक की बात करता है, तो अच्छी बात है, किन्तु उसमें वह किसी प्रकार के जोखम को नहीं उठा रहा है, जबकि यहां देवराम यदि ठकुराइन का पक्ष लेगा तो परिणाम क्या होगा, उसे समझा जा सकता है। यथा ''सो तो आप सांई-गुसांई ही ठहरे, थोकदार ज्यू। आप नहीं तो फिर कौन ठहरा हमारी जताने वाला ? मगर मैं इस समय तो आपके साथ नहीं ही चल सकता। सरपंच पद्मादत्त ने मुझसे कह रखा कि पंचायत के समय आदमी भेजकर बुला लेंगे। और जहां तक पक्ष लेने का सवाल हुआ, तो पंच का आसन धरमराज का आसन होता। वहां पर तो न्याय, इंसाफ का ही पक्ष लेना पड़ता, इस धरमशास्तरी बात को आप हमसे ज्यादा जानने वाले हुए।''[६]

स्वाधीनता के पश्चात् इस संविधान के कारण, जिसे कुछ दलित चेतना- संपन्न लोग, ''भीम-संहिता'' भी कहते हैं, दलित जातियों में जो एक नयी चेतना, नयी सुगबुगाहट सुनाई पड़ रही है, वह कुछ सवर्ण जातियों को बिलकुल नागवार गुजर रही है, जिसे हम कहानी में एक स्थान पर

कल्याणसिंह के शब्दों में लक्षित कर सकते हैं- ''कबसे पुकारते-पुकारते परेशान हो गया, यह नमकहराम अब इस समय अपनी सवारी लिए आ रहा। अरे। आजकल इन लोगों की नसें एकदम ऊपर चढ़ी हुई है। सुराज क्या आया, इन लोगों के बाप का ही राज आ गया। अरे सुसुरों, जो चार मुट्ठी जमीन जोतने-कमाने को दे रखी, उसे तो छीन ही लूंगा, साथ ही अपने घर-गिरस्ती और खेती के कामकाजों में हाथ लगाने से भी फटकार दूंगा, तो ऐंठी-बैठी सब बिसर जाओगे। तब जाना ससुरी अपनी हरिजन-पार्टी कोंगरेस के पास।''[७]

प्रस्तुत कहानी का देबराम दलित-चेतना संपन्न व्यक्ति है। डॉ. बाबसाहब अम्बेडकर कहा करते थे कि गुलाम को अहसास करा दो कि वह गुलाम है, तभी उसमें अपनी स्थिति को लेकर असंतोष अतएव विद्रोह पैदा होगा। देवराम की अपनी स्थिति का अहसास हो गया है। वह अपने वर्ग के लोगों को अक्सर कहता रहता है कि अपने बच्चों को पढ़ावें। इस संदर्भ में मटियानीजी की एक सार्थक टिप्पणी कहानी में मिलती है- ''देवराम की आंखों में आजकल एक और सपना तैरने लग गया था। उसका बेटा चेतराम अगर हाईस्कूल भी पास करले और कभी पटवारी-पेशकार बनकर इस पट्टी में आ जाए, तो उसका सिर औरों से हाथ-भर ऊँचा हो जाएगा। आज जो ठाकुर-ब्राह्मण उसे ''डुमड़ा-डुमड़ा'' कहते है, कल वही नमस्कार करने लग जायेंगे। जब-जब उनकी गरज पड़ेगी चेतराम की ''पटवारीज्यू-पेशकारज्यू'' कहते फिरेंगे। देवराम की अवमानित आत्मा उसे कचोटती और वह चाहता कि उसकी जात-बिरादरी के लोग इस चाकर परंपरा से मुक्ति पाएं। वह अकसर अपने बिरादरों से कहा भी करता - ''यारों एक जानवर तो होते है घास खाने वाले, मगर अन्न खाने वाले जानवर हमीं लोग ठहरे। अगर शिक्षा नहीं हुई, सिर ऊँचा करके चलने का अभिमान नहीं हुआ, और जात-बिरादरी कभी आगे बढ़ाने की कामना नहीं हुई, तो घास और अन्न में फर्क ही क्या होगा ?''[८]

देबराम के माता-पिता ठाकुर कल्याणसिंह के माता-पिता की चाकरी करते थे। इस प्रकार यह "चाकर-परंपरा" पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी और गुलामी भी कैसी? शरीर ही नहीं आत्मा भी गिरवी रखनी पड़ती थी इन ठाकुरों के यहां। ठाकुर अच्छा-भला हुआ तो ठीक है, नहीं तो उनकी बहू-बेटियों-बहनों-औरतों की इज्जत-आबरू सलामत नहीं रहती थी। मोहनदास नैमिशराय की कहानी "अपना गांव" में ऐसे ही एक ठाकुर के जुल्मों-सितम की कहानी लेखक ने कही है। जो ठाकुर खुद अपनी बहू की इज्जत पर हाथ डाल सकता है, वह अपने चाकरों की औरतों के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता ? गांव के साठ साल बूढ़े हरिया के पोते संपत की पत्नी छमिया खूबसूरत और चंचल है। जमींदार के मंझले बेटे की उस पर नजर है। जब संपत नौकरी की तलाश में शहर जाता है, तो मंझले ठाकुर की बात को नही मानने वाली छमिया को चिलमनंगी करके पूरे गांव में घुमाया जाता है।[९] लेखक ने हरिया का जो आत्म-मंथन दिया है, वह "कब तक पुकारूँ?" के सुखराम की स्मृति को ताजा कर देता है-

"वह (हरिया) इसी गांव में पैदा हुआ था। जवान हुआ और बूढ़ा भी। अब इसी गांव के मरघट में एक-न-एक दिन लकड़ियों के साथ जला दिया जाएगा। पर इस गांव में मिला क्या ? उसे तथा उसकी जाति के लोगों को। बार-बार बेइज्जती और जलालत की जिन्दगी उसे नफरत सी हो गई थी, इस गांव से। ठाकुर के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी जाति के लोगों पर अत्याचार करते रहे और वे उनकी गुलामी। आज सुबह संपत ने ठीक ही तो कहा था- वे मुरदा है, गुलाम है और गुलामों की भी भला कोई इज्जत होती है। लगभग आधी उम्र उसकी आजादी के पहले गुजरी थी और आधी बाद में। पर कुछ बदलाव न हुआ था गांव में। वैसी ही परंपरा वैसे ही रिवाज। उसके पोते ने जरूर दस जमात पास कर ली थी। पर क्या हुआ, क्या मिला उसे ? पांच साल हो गये दस किताब पास किये। चपरासी तक की नौकरी भी नहीं मिली। कई बार शहर भी हो आया, पर कहीं सुनवाई नहीं।"[१०]

इस प्रकार दलित-विमर्श की दृष्टि से मटियानीजी की यह कहानी एक अत्यंत सशक्त कहानी है । इसका देवराम अब जग गया है । उसे अपनी गुलामी का अहसास हो गया है । डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के इस सिद्धांत को वह आत्मसात कर चुका है-एज्युकेट, आरगेनाइज एण्ड एजिटेट। शिक्षा, संगठन और संघर्ष। लक्ष्मी ठकुराइन के पक्ष में, न्याय के पक्ष में पंचायत में कहने का मन वह बना चुका है और ऐसा करना अर्थात् संघर्ष का रास्ता चुनना । डॉ. रमणिका गुप्ता की कहानी ''परनाम नेताइनजी'' इसका प्रमाण है कि शिक्षा, संगठन और संघर्ष से दलित जातियां क्या हासिल कर सकती हैं?[११]

(२) सतजुगिया आदमी :-

इस कहानी में दलितों की दो पीढ़ियों का टकराव है। कहानी नायक हरराम का बेटा परराम- ''घुघुतिया त्यौहार'' कहानी के नायक देवराम की तरह जग गया है। हरराम पुरानी पीढ़ी का है । ब्रहमज्ञान और उसके आतंक से डरता है। परराम नयी पीढ़ी का युवक है। वह पंडित-पुरोहितों के ढोंग-ढकोसलों को नही मानता, बल्कि उन्हें चुनौती देता है। कहानी कुल इतनी है - गांव के तिवारी खोला के पंडित केशवानंद की भैंस मर गयी है। परराम के नेतृत्व में गांव के, दलित-युवओं ने निश्चय किया है कि वे मरे ढोर को खींचने नहीं जायेंगे, मरे ढोर का मांस नहीं खायेंगे, ऊँचे लोगों के यहां सफाई काम करने नहीं जायेंगे, संक्षेप में वे उन तमाम कार्यों को नकारते है जिनके कारण उनको नीच और कमीन समझा जाता है। वे बाबा अम्बेडकर के शिक्षा-संगठन और संघर्ष के मर्म-धर्म को समझ गए हैं।

पंडित केशवानंद की ओर से कई बार कहलवाया जाता है पर जातिगत संगठन के कारण कोई भी चमार उनकी भैंस को खींचने नहीं जाता है। दूसरे चमारों को परराम ने ही चढ़ाया है। फलत: हरराम अपने बेटे को लेकर बहुत चिंतित है। परराम जीतराम लुहार के बेटे बचेराम की बैठक में था । हरराम

वहां पहुंच जाता है और अपने बेटे को फटकारते हुए कहता है- अरे, ओरे परराम ! अपनी महतारी के मुस्यार ! जरा बाहर निकल तो । क्यों रे अधरमी। नहीं मानेगा तू मेरी बात? आ गया क्या तेरा भी सत्यानाश का बखत तेरी बुद्धि विपरीत हो गयी, जो म्लेच्छ होकर बर्मज्ञानी लोगों से बैर साध रहा ? डंस लेगा कालीनाग तुझे ! कपूत उपज गया स्साला मेरे खानदान में। अपने पुरखों की नाक काटने पर अड़ गया कमीना । मंतर मार देंगे मूठ में आचमन का जल भरके, तो कालीनाग... जिन लोगों का इस नौखंड धरती पर राज चल रहा, वो इंगरेज साहब लोग तक जिनको अपनी टोप झुका रहे, इन महाज्ञानियों से टक्कर लेगा तू?''[१२]

यहाँ पर हरराम का जो गुस्सा है, वह एक प्रकार के ब्राह्मणी-आतंक के कारण है। उनके हजारों साल के प्रचार-तंत्र के कारण है। उनकी कहानियों को गढ़ लेने की बुद्धि के कारण है। बुध्धशरण हंस की कहानी ''बुध सरना कहानी लिखना है'' का जेठू पंडित अपनी पत्नी को ठीक ही कहता है- ''पंडिताइन इस मंत्र को याद रखो । हिन्दू जब तक अंधविश्वासी बने रहेंगे ब्राह्मणों को कष्ट नहीं होगा । इस देश से कुछ भी चला जाय । हम ब्राह्मणों को गम नहीं होगा । केवल अंधविश्वास को महाप्रभु बनाए रखें । अंधविश्वास ही ब्राह्मण की संपत्ति है। अगर वह गया तो समझो ब्राह्मणवाद, सनातनधर्म का सत्यानाश।''[१३] यहाँ हरराम की जो बातें हैं वे भी अज्ञान और अंधविश्वास पर आधृत है।

उसके जवाब में परराम जो कहना है वह दलित-चेतना को समृद्ध करने वाला है। ''बौज्यू, कालीनाग तो न पंडित राधवानंद की मुट्ठी में था, न केशव पंडित के आचमन में है। कालीनाग तो असल में तुम जैसे मूरख लोगों की आत्मा और बुद्धि से लिपटा हुआ है और शिल्पकार खानदानों को डंसता ही चला जा रहा है। हम डोम लोंगो की आत्मा और बुद्धि को एक जहर तो जन्म-जन्मांतरों से लगा हुआ। ऊँची जाति के ये लोग हमें कुत्तों से भी ज्यादा अछूत मानते आये। म्लेच्छ कहकर दुत्कारने आये। दूसरा

कालीनाग तुम जैसे हमारे पुरखों की दुर्बुद्धि का हमें लपेटता रहा। तुमने कहा जैसे कुत्तों के कबीले में कुत्ते ही पैदा होते हैं, ऐसे हम म्लेच्छों के कबीले में म्लेच्छ ही पैदा होंगे। तुम लोगों का गंदा खून हम लोंगो की नसों में भर गया। कालीनाग तो औरों को डंसता है, मगर हम निर्बुद्धि डोमों की बुद्धि हमको डंसती रही। जैसे ही हम सिर उठाकर जीने की कोशिश करते हैं, वैसे ही यह दुर्बुद्धि का नाग डंसने लगता है। मरे भैंस की खाल नहीं खींचने भैंस का शिकार (मांस) नहीं खाने से अगर सत्यानाश होता है तो रायबहादुर किसनराम का सत्यानाश क्यों नहीं हुआ ?[१४]

यहाँ पर परराम जिन रायबहादुर किसनराम का उदाहरण देता है, वह परराम का आदर्श-पुरूष है। इधर ब्रिटिश शासन में और बाद के समय में कुमाऊँ प्रदेश के कई डोम-चमार-शिल्पकार पढ़ लिखकर ऊँचे ओहदों पर पहुंच गये थे और मान-सम्मान का जीवन बीता रहे थे। किसनराम भी उनमें से एक थे। डॉ. सूरजपाल चौहान कृत कहानी "छूत कर दिया" में कहानी नायक बिहारीलाल के भी वैसे किसी अछूत जाति का है क्योंकि उसके पिता का नाम टीकाराम है। वह भी पढ़-लिखकर आई.ए.एस. हो जाता है और जिसके कारण पूरी बिरादरी की नाक ऊँची हो जाती है।[१५] यहां एक बात गौरतलब है कि पिछड़े तबके का कोई व्यक्ति यदि अपने वैयक्तिक संघर्षों से ऊँचे पद या ओहदे पर पहुंच जाता है तो वह बिरादरी के दूसरे लोगों के लिए मिशाल बन जाना है, वशर्तें कि वह अपनी जाति-विरादरी और उसके हितों से जुड़ा रहे, अन्यथा उसका विपरीत भी हो सकता है।

प्रस्तुत कहानी के हरराम में तो पंडित केशवानंद के तंत्र-मंत्र का खौफ बैठा हुआ है, अत: उससे रहा नहीं जाता और अपने एक बूढ़े साथी कमलराम के साथ भैंस खींचने पहुंच जाता है। जिस प्रकार प्रेमचंद की कहानी "सद्गति" का दु:खी चमार पंडित घासीराम के धार्मिक आतंक के कारण अपनी शक्ति के उपरांत जोर-दम लगाने पर दम तोड़ देता है, ठीक उसी प्रकार यह "सतजुगिया आदमी" हरराम भी दम तोड़ देता है। यह विशेषण

हरराम को प. केशवानंद की धर्मपत्नी पदमावती बौराणीज्यू ने दिया था। यथा "शाबाश हरराम, शाबाश ! आखिर कुछ भी हो, तू सतजुगिया आदमी है। अब तो इस संसार में सारे धरम-करम उठते ही चले जा रहे हैं। अपने-अपने कुल-धर्म को लोग तिलांजलि देने लग गये। अरे, सत्य-धर्म ही नहीं रहेगा, तो शेषनाग भगवान को कहां से आधार मिलेगा ?[१६] कहानियाँ और कहानियां इन कहानियों के माध्यम से ही तो दलितों को हजारों वर्षों से ठगा जा रहा है और सच तो यह है कि ये बातें इतनी बार पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों को पिलायी गई है कि लोग इसी को धर्म समझने लगे हैं। यहां पंडिताइन जो कहती है उसके कथन में, उसकी नियत पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि वह तो बेचारी वही कह रही है जो उसको "घुट्टी" में पिलाया गया है। कोई हरराम को समझावे कि पंडित केशवानंद भैंस पालकर और खेतीबाड़ी करके कौन-सा धर्म-पालन कर रहे हैं ? काश, कोई "सवा सेर गेहूँ" (प्रेमचंद) के शंकर कुर्मी को समझावे कि क्या विप्रजी महाराज कृषि और महाजनी करते हुए असली ब्राह्मण रह गए हैं ? डर, और केवल डर पर हमारे तथाकथित धर्म की बुनियाद रखी हुई है। और आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि जिन बातों से डरना चाहिए उन बातों से तो कोई नहीं डरता। डरना अपने कुकर्मों से चाहिए, पाप से चाहिए, दयाहीनता और अमानवीयता से डरना चाहिए।

(३) नंगा :-

मटियानीजी की "नंगा" कहानी कुमाऊँ प्रदेश के दलितों के यौन-शोषण और रेवती नामक शिल्पकारिन के आत्म-गौरव की कहानी है। कहानी का शीर्षक "नंगा" है। यह ध्वन्ति करता है कि "नंगा" यह दलित समाज की नहीं है, "नंगा" गुमानी ठाकुर है, "नंगा" यह झूठे और मक्कार लोगों का समाज है, "नंगी" व्यवस्था है। इस कहानी की रेवती का पति हरराम गुमानी ठाकुर का हलिया है। गुमानी ठाकुर की नजर रेवती पर थी।

वह युवान और सुंदर थी। मेहनत से कसी हुई गठीली देह उसे और आकर्षक बना देती थी। अपनी इस 'खोरी' दृष्टि के कारण गुमानी ठाकुर कोसी नदी के किनारे की अपनी जमीन पर हरराम का "छाना" बनवा देता है। इसलिए हरराम और रेवती अपना पुश्तैनी मकान छोड़कर ठाकुर की जमीन पर रहने आ जाते हैं। ठाकुर को शायद पहले से ही हरराम की बीमारी के बारे में मालूम था और वह यह भी जानता था कि हरराम अब इस दुनिया में ज्यादा दिन का मेहमान नहीं है। यही सब सोचकर गुमानी ने इन लोगों को अपनी जमीन पर बसने दिया था। फलत: रेवती का पति जब मर जाता है, तब रेवती पुन: अपने पुश्तैनी मकान में रहने जाने की बात करती है पर ठाकुर अपनी हमदर्दी और सहानुभूति जताकर उसे रोक लेता है। वह रेवती को कहता है - "कौन-सा घर ऐसा होता है, जिसमें कोई मरता नहीं ? और कौन सी ऐसी औरत जो विधवा नहीं होतीं? मरने से ही घर छोड़ दे रेवती, तो आज सारे लोग जंगलों में रहते। फिर तेरा पुश्तैनी घर तो अब टूटने भी लगा।"[१७]

ठाकुर चाहता तो उसका पुश्तैनी मकान भी ठीक करवा सकता था, पर ठाकुर भला ऐसा क्यों चाहता ? उसकी योजना के हिसाब से ही सब चल रहा था। सहानुभूति और हमदर्दी जताने के बहाने ठाकुर का आना-जाना लगा रहता था। उसको तो एक मुफ्त की मजदूरन मिल गई। ठाकुर रेवती की हर जरूरत पूरी कर देना था। पहले कुछ दिन तो रेवती को कुछ अटपटा-सा लग रहा था। हरराम को गुजरे ज्यादा समय नहीं हुआ था। पर घास और चिनगारी का साथ कब तक निभता ? धीरे-धीरे रेवती स्वयं उस "जादुई" बहाव में बहने लगी। वह खुद को ठाकुर की "रखैली" ही समझने लगी थी। परिणाम यह हुआ कि रेवती को ठाकुर का गर्भ रह गया। कुदरत का यह भी कैसा करिश्मा है कि जिस गर्भ को लोग जतनपूर्वक बचाना चाहते है वह तो कई बार गिर जाता है। पर अनचाहा गर्भ? उसे गिराने के बहुतेरे प्रयत्न किए गए, पर उसे नहीं गिरना था, नहीं गिरा। तब रेवती और ठाकुर में यह तय हुआ कि जनम के बाद बच्चे को "गाबड़गो" दे देंगे। अर्थात कोसी

नदी में बहा देंगे। आखिर के कुछ महीने रेवती बीमारी का बहाना करके अपने 'छाने' में ही पड़ी रही। देवर को भी मायके भेज दिया। लेकिन जब बच्चे का जन्म हुआ तब रेवती का मन मोहिल हो उठा। रेवती के भीतर की वासनावती स्त्री हार गई और ''महतारी'' जीत गई। उसने पक्का निर्णय कर लिया कि वह बच्चे को कोसी में नहीं बहायेगी। उधर ठाकुर-ठकुराइन बहुत दबाव डालते रहे पर रेवती टस से मस नहीं हुई। और एक दिन उसी बच्चे के अधिकार के लिए रेवती पंचायत बिठाती है। लेकिन ठाकुर अपने रसूल का इस्तेमाल करते हुए सब पंचों को अपने पक्ष में कर लेता है। बिरादरी के लोग भी ठाकुर के डर से रेवती के खिलाफ हो जाते हैं। रेवती का चचिया ससुर सगतराम खुले आम रेवती का पक्ष लेता है। वह पंचायत में भी था, पर पंचायत का सारा नकशा वह समझ चुका था, अत: उसमें उपस्थित नहीं रहता। पंचायत तो उलटें रेवती को गलत-सलत सुनाती है और रेवती को माफीनामा लिखने के लिए कहती है। पंचायत चाहती है कि रेवती माफीनामा पर अपना अंगूठा लगा दे और तब वे ठाकुर को सिफारिश कर सकते हैं कि एक बेवा और लाचार औरत पर दया करके ठाकुर रेवती के पति को दी हुई जमीन पर उसका कब्जा रहने दे। इस बात पर रेवती का पुण्य-प्रकोप जाग उठता है और वह उन सयाने पंचों की भी खरी-खरी सुना देती है। यथा -

''पंच महाराज लोगों, हंसों की पांत तो जरूर गू खा गई मगर कौवे की जात अपना धर्म नहीं छोड़ेगी। जिस दगाबाज ने थूंक के चाट लिया, उसकी जमीन में पांव रखने से मर जाना बेहतर होगा कहीं। परमेश्वर तो कभी न कभी मेरा इंसाफ करेगा। मैं तो अपनी संतान की हत्या खूद न करूंगी। ठकुरानी नहीं, शिल्पकारनी हूं। मेहनत मजदूरी से गुजर करूंगी। बैल को बेच दूंगी। गैया को यहीं बांध लूंगी, मगर हूं अगर मैं हरराम की घरवाली और इस नरूआ की महतारी अगर पी रखा है मैंने भी अपनी महतारी का दूध, तो आज के दिन से इस गुमानी ठाकुर की जमीन और मकान में हगने-मूतनें भी नहीं आऊंगी।''[१४]

''रतिनाथ की चाची'' (नागार्जुन) और सूखता हुआ तालाब (डॉ. रामदरश मिश्र) जैसे उपन्यासों में हम देखते हैं कि ऊंची जाति की स्त्रियाँ विधवाएँ और अविवाहित कन्याएँ जहां अपना अवैध गर्भ गिरा देती हैं, वहां रेवती जैसी शिल्पकार तथाकथित नीची जाति की औरत न केवल बच्चे को जन्म देती है, बल्कि मेहनत-मजदूरी करके उसे पालने-पोसने और बड़ा करने का संकल्प भी करती है। यहां लेखक ने एक संघर्षशील औरत के जूझारूपन को उकेरा गया है।

(४) प्रेतमुक्ति:-

''प्रेतमुक्ति'' मटियानीजी की एक बहुचर्चित कहानी है। राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित ''एक दुनिया : समानान्तर'' में मटियानीजी की इस कहानी को संकलित किया गया है। यहाँ दलित-विमर्श एक दूसरे रूप में आया है। इसका चरित-नायक किसनराम है। इसका अपने मालिक केवलानंद पांडे के साथ बड़ा अच्छा संबंध है। किसनराम पांडेजी का हलिया है। पांड़ेजी और किसनराम की उम्र में बहुत ज्यादा अंतर नहीं था, पर किसनराम जल्दी ही बुढ़िया गया था। नैनीताल से हाईस्कूल और बनारस से शास्त्री करके पांडेजी जब अपने गांव लौटते है तो पाते हैं कि किसनराम अब उनका हलिया है। किसनराम की मां मर गयी तो वह अपने मामा के यहां चला गया था। मामा लुहार थे। किसनराम सिर्फ किसानी या ओढ़गिरी जानता था सो लुहारगिरी उसे रास नहीं आई। एक दिन लोहा पीटवाने में अपने दायें हाथ की अंगुलियां पिटवा बैठा था। हाथ बेकार हो गया तो मामा ने भी दूर कर दिया। तब पत्नी भवानी को लिये ससुराल चला गया। ससुर-सालों ने भवानी को तो रख लिया पर उसको विदा कर दिया। दायें हाथ की तीन अंगुलियां तो चली गयी थी, शेष दो से सोटा और बायें हाथ से हल की मूठ पकड़कर किसनराम पांडेजी की खेती-वाड़ी संभाल रहा था। जब किसनराम को लगा कि वह अपने बूठे हाथों से काम बराबर नहीं कर सकता तो उसने कुसुमवती बहूरानीजी

को कहा था कि वे अपने सौतेले भाइयों में किसी को रख ले, तब रोते हुए किसनराम के आंसू खुद बैराणीज्यू ने पोंछे थे । वह कह रही थी "हिया-हिया सभी का तो एक होता है, केवल। मैंने आंसू पोंछे, तो मेरे पांव के पास की मिट्टी उठाकर कपाल से लगाते हुए बोला, "बौराणीज्यू" पारसमणी ने लोहे का तसला छू दिया है, मेरे जनम-जनम के पापों का तारण हो गया है। "शूद्र कुल में जनमा है, मगर बड़ा मोह, बड़ा वैराग्य है किसनिया छोरे में।"[१९]

कहानी का जो मूल "एसेन्स" है वह यह कि किसनराम जब-तब अपनी सद्गति के लिए पांडेजी को कहता रहता है। वस्तुत: अपना तर्पण करवाकर वह जो मुक्ति चाहता है और "प्रेतयोनि" से बचना चाहता है, उसका मूल रहस्य यह है कि उसकी पत्नी भवानी उसे छोड़कर दूसरे के घरबार चली गई थी । वह चाहता तो कोई दूसरी ला सकता था, पर भवानी की चाहत के कारण वह ऐसा नहीं करता । भवानी की बेवफाई के बावजूद किसनराम उसको बेइन्तिहा प्यार करता है। प्रसादजी की काव्य पंक्ति कानों में गूंज जाती है-"छलना थी फिर भी मेरा उसमें विश्वास घना था ।"[२०] अपने जाने में होश-हवाश में तो वह भवानी का बुरा नहीं चित सकता था । पर उसे मालूम था कि इधर उसकी आत्मा उसके लिए बहुत कलप रही थी और उसने सुन रखा था कि "औरत-संतानहीन लोगों की इस लोक से मुक्ति नहीं हो पाती है और वे रात-रात भर मशालें हाथ में लिये, अपने लिये पत्नी और संतति खोजने की तृष्णा लिये कायाहीन प्रेत-रूप में भटकते कहते हैं... उच्च जाति के लोग प्रेत-योनि में ज्यादा नहीं जाते हैं, औरत-संतति से वंचित रहने पर भी, उसका कारण यह है कि उसकी सद्गति शास्त्रोक्त पद्धति से हो जाती है।"

किसनराम को अपनी व्यक्तिगत मुक्ति की चिन्ता नहीं है। उसे चिन्ता भवानी की है। एक स्थान पर वह पांडेजी के आगे अपने इस रहस्य का उद्घाटन करता है- "महाराज अपने तारण-तरण की उतनी चिन्ता नहीं है.... मगर

PITh 11435

आत्मा इसी पाप से डरती है कि, कहीं प्रेत-योनि में गया, तो उस भौनी-छोरी को न लग जाऊँ? हमारी सौतेली महतारी में हमारे बाप का प्रेत आने लगा है महाराज! और उसे उसके लड़के गरम चिमटों से दाग देते हैं, कहीं उसके लड़के भी उसे ऐसे ही न दागें, महाराज।..... जिसने जीते-जी अपना सारा हक-हुकम होते हुए भी एक कठोर वचन तक नहीं कह सका, कि जाने दे, रे किसनराम, पुतली जैसी उड़ती छोरी है, जहां उसकी मर्जी आये, वहीं बैठने दे... उसे ही मरने के बाद दागते कैसे देख सकूंगा...अच्छा, गुसाईज्यूं, अगर कोई आदमी जीते-जी अपनी आंखे निकालकर किसी गरूड़ पक्षी को दान करदे, तो वह प्रेत-योनि में भी अंधा ही रहता है, या नहीं?[२२]

किसनराम प्रेत-योनि में अंधापा इसलिए चाहता है कि वह भवानी को पहचान न सकें। बात अज्ञान और अविश्वास या अंध-विश्वास की है, पर कितनी बड़ी बात है। अपनी धोखेबाज और बेवफा पत्नी के पीछे ऐसी निष्ठा का किस्सा किसी संत के संदर्भ में भी सुनने में आना है।

किसनराम बीमार था और उन दिनों में पांड़ेजी को अपनी पुरोहिती के लिए कहीं बाहर जाना पड़ा था। एक दिन वे लौट रहे थे तो क्या देखते हैं कि सुंयाल के किनारे चमरौनी घाट पर किसी मृतक का अग्नि-दाह हो रहा था। पांड़ेजी को लगता है कि शायद किसनराम ही नहीं रहा। नदी पार करके वहां पहुंचते हैं तो सब लोग जा चुके थे। मुर्दा पूरी तरह से जल चुका था। पर वहां उनकी किसनराम की दोपलिया टोपी मिलती है और पांड़ेजी को विश्वास हो जाता है कि किसनराम की ही मृत्यु हो गई है। अत: वे उसका तर्पण करना चाहते है और जाति-विरादरी के डर से वहां से हटकर कुछ दूरी पर सुंयाल की एक पतली धारा के पास वे शास्त्रोक्त विधि से उसका तर्पण करते हैं। उदार होते-होते पांड़ेजी यह भी भूल गये कि वह एक शूद्र का तर्पण कर रहे हैं।''[२३]

किन्तु किसनराम का तर्पण करके गांव के एकदम समीप पहुंच जाने पर पांड़ेजी को याद आता है कि कल ही उन्हें अपने पिताजी का श्राद्ध भी तो

करना है? और ''पहले एक शूद्र का तर्पण करने के बाद फिर अपने धर्मप्राण और शास्त्रजीवी पिता का श्राद्ध। पांड़ेजी ने अपने हाथों को देखा और लगा हाथ अशुद्ध हो गए हैं। वे सोच रहे थे कि यों चोरी-चोरी शूद्र का तर्पण करने के बाद, बिना घरवालों से कुछ कहें सुनें उन्हें पिताश्री का श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिए। स्वर्गस्थ पितर के प्रति यह छल अनिष्टकर ही होगा। पांड़ेजी जानते थे कि अछूतों के प्रति तमाम मानवीय उदारताओं के बावजूद, जातीय-संस्कार की एकांत निष्ठा और कट्टरता उनके पिता में थी। जिसने जीवन भर शास्त्र-विरुद्ध कोई कर्म नहीं किया, उसी का श्राद्ध अशुद्ध हाथों से कैसे किया जा सकता है?''[२४]

पांड़ेजी को लगता है कि किसनराम की तो ''प्रेममुक्ति'' हो गयी है, लेकिन उसके पश्चाताप का प्रेत अब उनसे चिपट गया है। किन्तु तभी अपनी सौतेली मां को फूंककर, धीरे-धीरे लौटता हुआ, दूसरे रास्ते से आता हुआ किसनराम पांड़ेजी को दिख जाता है। दण्डवत झुके हुए किसनराम को पांड़ेजी ''जीता रह'' कहने के लिए हाथ ऊपर उठाते हैं और इसके साथ ही मानो वे भी शंका-कुशंकाओं के प्रेत से मुक्त हो जाते हैं।

अब दलित-विमर्श की दृष्टि से इस कहानी में निम्नलिखित मुद्दे हमारे सामने आते हैं-

(१) किसनराम की दलित-चेतना पुरानी है। वह अपनी स्थिति से संतुष्ट है।

(२) पांड़ेजी तथा उनका परिवार उदार है और उनमें जातिगत कट्टरता का अभाव है। बाह्यत: छूताछूत को मानते हुए भी किसनराम के साथ उनका जो व्यवहार है, वह पूर्णतया मानवीय है। तथापि जातीय संस्कारों से वे पूर्णतया मुक्त नहीं है।

(३) असल में कहानी का मुख्य मुद्दा किसनराम का ''संत-स्वभाव'' एवं चरित्र है।

(४) लेखक का दलित-विमर्श तटस्थ तथा पूर्वाग्रह-मुक्त है। लेखक इस कहानी के द्वारा यह संदेश देना चाहते हैं कि उच्च मानवीय गुणों और मूल्यों

पर किसी जाति-विशेष या वर्ग-विशेष का एकाधिकार नहीं हो सकता।

(५) चिट्ठी के चार अक्षर :-

"चिट्ठी के चार अक्षर" कहानी एक नारी-केन्द्रित कहानी है। उसकी नायिका दुर्गा नाई जाति की है। गरीब और छोटी जाति की है। दुर्गी गाय-बकरियां चराने जंगल में जाती है। वहां ब्राह्मण-ठाकुरों के बन्दरनुमा "बच्चे उसे जब-तब छेड़ते रहते हैं-बाहर बसन्ता जन रमे, धोबन-भंगन दोय आंव-गांव की डोमिनी, नाइन सब संग होय।"[२५]

ऐसे में परताप ठाकुर नामक एक उच्च जाति का युवक उन बंदरों को पीट देता है। तबसे वे उसे छेड़ना बंद कर देते हैं। पर इस घटना के कारण दुर्गा परताप को चाहने लगती है। परताप भी उसे चाहता है। एक दिन दुर्गा परताप ठाकुर को पूछती है- "परताप ठाकुर! छोटी जाति की लड़की का जूठा, मनको नहीं घिनाता ?"[२६]

तब उसके जवाब में परताप ने कहा था "घिनौने जल को अंजुलि में भरकर उससे आचमन ही कौन करता है, दुर्गी ? वर्जित फल को मुंह कौन लगाता है? जिसे भला माना जाता है, उसे ही मन दिया जाता है।"[२७]

फलत: ये दोनों तन-मन से एक-दूसरे को चाहने लगते हैं और फलस्वरूप दुर्गा को परताप का गर्भ रहता है। परताप अपने घर और समाजवालों का खूब विरोध करता है, पर बहन की शादी की बात के आगे उसे चुप रह जाना पड़ता है। दुर्गा का बाप शोबनसिंह तो पंचायत में नालिश ठोंकने की बात करता है, पर दुर्गा अड़ जाती है-"जो भाई-बिरादरों के आतंक से कसाई की गाय बनकर उसे त्याग चुका है, उससे हरजा-खरचा वसूलने से क्या सुख मिलेगा ? शोबनसिंह के जिद करने पर, आतमघात कर लेने की धमकी दुर्गा ने दी थी तो वह चुप हो गया। और दुर्गा तबसे कलंकिनी का शाप भोगती चली आ रही है।"[२८]

ऊँची जाति की हाई-फाई सोसायटी की और आत्मनिर्भर लड़कियाँ

अब कहीं कुंवारी मां बनती हुई कभी-कभी सुनाई पड़ती है। इसका अर्थ यह कतई नहीं की उन्हें कौमार्यावस्था में कभी गर्भ रहता ही नहीं था। गर्भ रहता था पर उसे गिरा दिया जाता था। इस अवस्था में गर्भ को धारण करके बच्चे को जन्म देने का महतारी धर्म तो केवल निम्न जाति की दुर्गा जैसी लड़कियां ही बजा पाती है। दुर्गा को परताप ठाकुर से हमदर्दी है, आक्रोश उसे छू तक नहीं गया है। परताप ठाकुर को भी अपनी कायरता कचोटती थी। अत: एक दिन आमना-सामना होने पर दुर्गा उसे कहती है- ''मेरी तरफ से तू बेगुनाह है।'' हालांकि उलाहने के तौर पर वह कहना चाहती थी- ''ऐसा ही होता है ठाकुरों का वचन ?'' पर दुर्गा एक भाई की मजबूरी जानती थी, सो ऐसा कह नहीं पाती।

किन्तु परताप ठाकुर को दुर्गा की अनहरी बात भी कलेजे से लग जाती है और वह फौज में भर्ती हो जाता है। इधर दुर्गा परताप के बच्चे मधुआ को जनम देती है। फौज में कुछ बन जाने के बाद एक दिन दुर्गा के नाम परताप का ''मन्यौडर'' और पत्र आता है, जिसमें उसने वहां से लौटने के बाद बकायदा उसे स्वीकारने की बात लिखी थी। यही है- ''चिट्ठी के चार अक्षर''।

दलित-विमर्श की दृष्टि से यहां जो बात उभरकर आती है वह यह है कि जिसे हमारा पाखंडी समाज कलंकिनी समझता है ऐसी दुर्गा जैसी सती-साध्वी और पवित्र नारियां निम्न तबके में भी होती है। ज्यादातर किस्सों में उच्च-वर्ग द्वारा निम्नवर्ग की स्त्रियों का यौन-शोषण बताया गया है, पर यहां परताप जैसे युवक भी है जो प्रेम के खातिर निम्नवर्ग की स्त्रियों को अपनी पत्नी का दरजा भी देते हैं। यहां एक मुद्दा यह भी उभरकर आता है कि आर्थिक-दृष्टतया आत्मनिर्भर युवक ही ऐसे कठोर निर्णय लेकर उसे अंजाम दे सकते हैं। यहां दुर्गा एक दलित जाति की लड़की है। मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चे को पालती है, पर अपने मूल्यों पर कायम रहती है, क्योंकि वह भी आत्मनिर्भर है।

(६) लाटी :-

मटियानीजी में हमें कई बार एक अलग ही प्रकार की सृष्टि मिलती है। भिखारी, पागल, गूंगे, बहरे, लकवाग्रस्त, कोढ़ी, जेबकरते, शराबी, कबाबी तथा उठाईगिर टाईप लोगों की सृष्टि, दुन्यवी दृष्टि से देखें तो एक पलित सृष्टि। पर लेखक तो दूसरा सर्जक है, प्रजापति है, अत: उसकी रचना की ''रेंज'' में ये भी आ सकते है, और मटियानी में ये आये है। मटियानीजी के अनुभव का व्याप काफी फैला हुआ है। अत: उसमें जहां ''मिसेज ग्रीन वुड'' और परतीमा सासू जैसी सम्भ्रान्त महिलाएं हैं, वहां उत्तमा लाटी और मिरदुला कानी जैसी भिखारिन और बहरी-गूंगी औरतें भी है। पंतौली गांव के भैंसिया पड़ाव के पास वह हद दरजे के सिंगाली और पलित भिखारी डिगरराम (डिगरवा) के साथ भीख मांगती है। अलमोड़ा, पिथोरागढ़, बैरीनाग वाली सड़क पर पड़ाव ''भैंसिया छाना'' कहलाता है, वैसे यह भैंसों की जगह घोड़ों के ठहरने का स्थान ज्यादा है। डिगरराम की मृत्यु पर लाटी इतना भयंकर विलाप करती है जितना तो पतिव्रता ठकुरानियां और बहुरानियां भी नहीं करती। वह पंतौली गांव से इस चौराहे तक ढाई मील तक विलाप और चित्कार करते हुए आती है। लोग कहते है कि यह दरिद्र लाटी रांडी महाराज, साक्षात् सती सावित्री जैसे मुर्दे के पीछे पड़ गई, कहीं चिता में कूद मरेगी तो फिर पटवारी-पेशकार हमारी पकड़-धकड़ शुरू करेंगे। अब या तो लाटी हमारा पीछा छोड़े और या हम मुर्दे को कहीं खड्डे में फेंककर वापस चले जाएं।''[२९] अत: शायद डिगरवा की अर्थी की खड्डे में गिरा दिए जाने की आशंका से लाटी रूक जाती है और बाहें फैलाकर संकेत देती है कि अब वह अर्थी का पीछा नहीं करेगी। लाटी के इस विलाप को सुनकर बनारसी बुकसेलर कहता है- ''अरे ठाकुर साहब, लाटी जैसी जवान औरत का रूदन तो अर्थी पर लेटे मुर्दे की भी खड़ा कर दे।''[३०] बुकसेलर ने यह बात होटलवाले रतनसिंह के इस कथन पर कहीं थी- ''यारो, इतना विलाप करने वाली औरत जो मिल जाए तो किस ससुरे का मन नहीं मरने

को।"[३१]

उत्तमा लाटी एक औसत गोरी खूबसूरत और जवान औरत थी। उसमें कुछ ऐसा था कि जो लोग उसे देखते थे उनमें कुछ सम्मोहन-सा बना रहता था। पुजारी रामदत्त कहते थे- "काने, कलूटे और पलीत डिगरराम के साथ उत्तमा लाटी को देखने पर मुझे शिव-पार्वती का जोड़ा याद आने लगता।"[३२] इसी पुजारी के संदर्भ में एक स्थान पर लेखक की टिप्पणी है- मगर जब-जब लाटी अकेले आती, लोग उसके प्रति संवेदनशील हो जाते। इस रहस्य को सिर्फ रामदत्त पुजारी ही जानते थे कि अकेली उत्तमा लाटी को देखकर ही उन्हें स्त्री-कामना अनुभव होती है।"[३३] और इसी तृष्णा के कारण ही बनारसी बुकसेलर ने उस पर एक बार बलात्कार का प्रयत्न किया था। तब लाटी लगातार इतना चीखी थी कि बनारसी ने घबराकर दुकान का दरवाजा खोल दिया था। बनारसी ने चावल देने के बहाने उसे अंदर बुलाकर दरवाजा बंद कर लिया था, पर लाटी-चावल वहीं फैलाकर चली गयी थी। शुरू-शुरू में वह डिगरराम को पहुंचाने और ले जाने आती थी, फिर उसने उसके साथ सुबह से संध्या तक रहना शुरू किया। बाद में कभी डिगरराम की तबीयत ठीक न होने पर वह अकेले भी चली जाती थी। इस प्रकार लाटी उस "भैसियाछाना पड़ाव" का एक जरूरी अंग बन गई थी। जात्रा में जाने-वाले लोगों को लगता था कि लाटी में देवी आती है। पहली बार उसका यह रूप तब प्रकट हुआ जब बैसाखी की सैमदेव की जात्रा जा रही थी। जात्रावालों ने कोई देवी-गीत प्रारंभ ही किया था कि लाटी ने अपने रंगीन घाघरे के दोनों छोरों को हाथ में लेकर आकाश से उतरी परी की तरह नाचना शुरू कर दिया था। लाटी का यह नाच बड़ा दिव्य होता था।

वस्तुत: लाटी के घण्टों चलने वाले दारूण-करूण विलाप ने ही भैसियाछाना के इस चौबटिया पर डिगरराम की मृत्यु को इतना महत्वपूर्ण बना दिया था, अन्यथा डिगरराम जैसे एक हद दरजे के झिंगाली और पलीत भिखारी को कौन पूछने वाला था। बनारसी बुकसेलर के पूछने पर कि बोल

रांड, अपने खसम के मरने पर तू क्यों ढाई मील तक मुर्दे के संग चली आई और क्यों यह नौटंकी सी भीड़ इकट्ठी कर रखी है? तब बालकृष्ण के चित्र को अपने अधखुले पेट पर उल्टा रखकर वह यह संकेत देती है कि वह डिगरराम के बच्चे की मां बनने वाली है।[३४]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में लेखक ने लाटी जैसी एक भिखारिन का निरूपण करते हुए यह स्थापित किया हैं कि इस वर्ग के लोगों में भी मानवीय मूल्य हमें मिलते हैं। उनमें भी नैतिकता और पवित्रता पाई जाती है। लाटी जैसी भिखारिन के प्रति तथाकथित ऊँचे वर्ग के लोगों की जो लिप्सा और तृष्णा है, उससे उनकी भी मानसिक विकृतियां सामने आयी हैं।

(७) लीक :-

"लीक" एक व्यंग्यात्मक कहानी है। इधर नवजागरण और स्वाधीनता -संग्राम तथा उसके बाद के भी दलितोद्धार से सम्बद्ध कार्य तथा डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर की बृहदत्रयी सूत्र- शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्षी बनो के कारण पढ़े लिखे दलित जाति के लोगों में काफी परिवर्तन आ रहे हैं। कहानी नायक कुण्डलनाथ कनफड़ानाथ जाति का है, जिसकी गणना पिछड़ी जातियों में होती है। कुंडलनाथ इलाहाबाद युनिवर्सटी से बी.ए., एम.ए. करके युनिवर्सिटी में प्रोफेसर हो जाता है और प्रतिभावान होने के कारण चारों तरफ उसके नाम के डंके बजने लगते हैं। वह बज्यौली गांव का है। ठाकुर गोपाल सिंह डुंगरी गांव के है और जर-जमीं जोरू तीनों मामलों में भाग्य के बड़े बली है । ठाकुर गोपालसिंह के पिता किरपाल सिंह को अपनी जाति पर काफी गुमान था । उनकी पुत्री कलावती का रिश्ता अलमोड़ा के जाने-माने रईस सबल सिंह बौर के यहां से आया था। बौर भी होते तो क्षत्रिय ही है, पर क्षत्रियों के जातिगत संस्तरण में कुछ नीचे आते होंगे । अत: ठाकुर किरपालसिंह ने इतना अच्छा रिश्ता यह कहकर ठुकरा दिया था कि "बौर को बेटी देने से, ऊँची जाति के किसी बेठौर गरीब को देना पसंद

करूंगा।''[३५] परन्तु मटियानीजी का ही मुहावरा इस्तेमाल करें तो ठाकुर गोपालसिंह को अब ''आकाश हेरनी, पाताल फेरनी'' हो रहा था, क्योंकि उनको अपने परम पिता स्व. किरपालसिंह की ''लीक'' को छोड़ना पड़ रहा था। गुजाराती में एक कहावत है कि जिसको कोई नहीं पहुंचता है, उसका पेट पहुंचता है। अर्थात् जो व्यक्ति कई बार किसी बाहरवाले से हार नहीं मानता उसे अपनी संतान के आगे झुकना पड़ता है। गोपाल सिंहजी की पुत्री अलमोड़ा में पढ़ती थी, प्रोफेसर कुंडलनाथ की वक्तृता से प्रभावित होकर वह उनको चाहने लगी थी। कुंडलनाथ का व्यक्तित्व ही ऐसा था। गोपालसिंह पहले तो अपनी लाड़ली बेटी को हर तरह से समझाते हैं पर जानकी कलावती नहीं है। वह इस नये जमाने की शिक्षित और बालिग लड़की है। वह अपनी कैंजा (सौतेली मां) को साफ-साफ बता देती है- बौज्यू ने बिड़लगों के गोपाल चाचा की जैसी हठवादिता दिखाई, तो मैं गोली खाके तो नहीं मरूँगी, मगर अपनी राजी-खुशी से कुंडल के साथ चली जाऊंगी।''[३६]

फलत: गोपालसिंह की एक नहीं चलती। जानकी छोरी अपने निर्णय से टस से मस नहीं होती और जमाने के रुख को पहचानते हुए गोपालसिंह इस विवाह के लिए राजी हो जाते हैं। फिर बारी आती है कुल- पुरोहित पंडित कीर्तिवल्लभ की। नीच जाति में कन्या के विवाह की बात सुनकर पंडितजी पहले तो खूब नाच-नूच करते हैं, पर जब देखते हैं कि अपनी इस जिद के कारण अच्छे-खासे जजमान (बकरे) से हाथ धोना पड़ेगा, तब वे शास्त्र की ''लीक'' को जरा-सा मोड़ लेते है। किन्तु पंडितजी जाते-जाते भी एक बात ठाकुर के मन में बिठा देते है कि विवाह खूब धूम-धाम और शानो-शौकात से होना चाहिए ताकि उस पूरे तामझाम में ''छोटी जातिवाली बात'' दब सी जाए। अत: दूसरे दिन कुंडलनाथ से मिलकर उसके सामने यह ठाकुर यह बात रखते है कि बारात बज्यौली से न आकर अलमोड़ा से आवे और उसमें उनकी जाति के कनफड़ेनाथ बगैरह ज्यादा न हों, प्रोफेसर-मास्टर आदि पढ़े-लिखे लोग ज्यादा हों। दूसरी और कुंडलनाथ इस नये जमाने का

युवक था। वह सुधारवादी था। शादी-ब्याह के झूठे खर्चों में विश्वास नहीं रखता था। दूसरे सब लोगों को भी वह यही कहा करता था। वह विवाह बहुत ही सादगी से करना चाहता था। दूसरे वह एक दलित-चेतना संपन्न व्यक्ति है। इस ऊंचे मकाम पर पहुंचकर वह अपनी जाति-बिरादरी के लोगों को छोड़ना नहीं चाहता था, और नहीं उनसे घिनाता था। अत: इस समय तो ठाकुर की बात को सुन लेना है, पर जाते समय वह उनसे पूछता है कि पुरखों की इस धामधूमवाली ''लीक'' का पालन करना क्या अत्यंत ही आवश्यक है? उसके जवाब में ठाकुर कहते है कि हां, हां, इस हालात में तो बहुत ज्यादा जरूरी समझता हूं। यह मेरे लिए गौरव की बात हो सकती है। उसके उत्तर में कुंडल कहता है- ''तो जैसी आपकी इच्छा। मैं आपकी पितर-लीक का पालन करने की तैयार हूं.... मगर जब बारात आपके यहां से विदा होकर मेरे घर पहुंच जायेगी, तब मैं भी अपनी पितर-लीक पर चलूंगा, क्योंकि हर आदमी के लिए अपने पितरों-पुरखों की लीक पर चलना एक गौरवपूर्ण स्थिति होती है। सो, मैं यह प्रोफेसरी और प्रतिष्ठा की जिन्दगी को छोड़कर जुआरियों-शराबियों और चरित्रहीनों की मंडली में जाऊंगा, और अपने बाप-दादाओं की लीक पर चलते हुए खूब जुआ खेलूंगा, खूब शराब पिऊंगा और खूब...[३७]

कुंडलनाथ के उपर्युक्त कथन में जो ''मगर'' है, वह नये दलित-विमर्श की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। जैसे कहावत है कि कांटे से ही कांटा निकलता है, ठीक उसी तरह ''लीक'' की बात से कुंडलनाथ ठाकुर की ''लीक-परंपरा'' की ऐसी की तैसी कर देता है। इस कहानी से एक और बात जो उभरकर आयी है वह यह है कि निम्नजातियों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण उनमें भी कुछ लोग पढ़-लिखकर ऐसे स्थानों को पा लेते है कि उच्च वर्ग की लड़कियां भी उनसे शादी-ब्याह के लिए तैयार हो जाती है और उनके मां बाप पहले तो विरोध करते हैं, परन्तु बाद में लड़के की हैसियत देखकर ज्यादा उज्र नहीं करते हैं। जानकी भी जो अपने पिता से यह

कहने की हिम्मत जुटा पायी है उसके पीछे भी नारी-शिक्षा मुखय कारणभूत है। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में "दलित-विमर्श" के साथ-साथ "नारी-विमर्श" भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

उक्त कहानियों के अतिरिक्त "सावित्री", "नेताजी की चुटिया", "भंवरे की जात", " बर्फ की चट्टानें" आदि कहानियां है जिसमें दलित-विमर्श किसी न किसी रूप में मिलता है। "सावित्री" कहानी अन्यत्र "गृहस्थी" शीर्षक से भी प्रकाशित हुई है। इस कहानी की नायिका सावित्री जाति की मिरासीन है। नट, करनट, मिरासी आदि जातियों के लोगों की गणना जरायम पेशा लोगों में होती है और उनकी स्त्रियां शरीर का सौदा करती है। सावित्री का प्रेम-व्यापार बलराम ठाकुर से चल रहा है। सावित्री की मां कलावती उसे मिरासीनों वाली सीख देती है कि इन उल्लू के पट्ठे मर्दों से पैसे किस तरह ऐंठे जा सकते हैं। ठाकुर दण्डकेश्वर के मेले में आ रहा है और कलावती अपनी बेटी सावित्री को प्रशिक्षित करने में लगी है- जो साड़ी तुझे खरीदनी हो, सिर्फ इतना ही कह देना कि "हाय" कितनी शानदार दिखाई दे रही है।" ये चार दिन ही होते है इन मरदों की बंद मुट्ठी ढीली, करवाने के फिर तो यह मरद नाम की चरड़ी भैंस कहां थनों में हाथ लगाने देती?"[३८] इस प्रकार कलावती मिरासीन बेटी सावित्री को सारे तौर-तरीके और चालाकियां सिखाती हैं कि इस मेले में ठाकुर से किस प्रकार ज्यादा-से-ज्यादा पैसें ऐंठे जाएं। किन्तु सावित्री के भीतरी संस्कार कुछ दूसरे प्रकार के हैं। वह गाने-बजाने के इस व्यवसाय को छोड़कर भले घर की लड़कियों की भांति बलराम के साथ घर-गृहस्थी बसाने के स्वप्न देख रही है। ठाकुर की पहली पत्नी का देहान्त हो चुका था और उस पत्नी से उसे जो लड़का था वह ननिहाल में पल रहा था। इधर ठाकुर को सावित्री से प्रेम हो गया था। अत: सावित्री मां की सारी शिक्षा को भूल जाती है और ठाकुर के बिन मां के बच्चे की महतारी बनने का निर्णय कर लेती है। यथा "और हां, यह तो मैं तुमसे पूछना ही भूल गई कि पहली वाली दीदी का मुन्ना आखिर कब तक ननिहाल

में पड़ा रहेगा दूसरों के भरोसे? बेचारा मां की ममता को तरसता होगा वहां... मेले से लौटते ही उसे घर वापस ले आना है।[३९]

"नेताजी की चुटिया" एक व्यंग्यात्मक कहानी है। हमारे देश की राजनीति किस नाजुक और हास्यास्पद दौर से गुजर रही है और कैसे छोटे-छोटे महत्वहीन मामलों को बड़ा स्वरूप देकर मूर्ख अनपढ़ लोगों की भावनाओं को भड़काकर चुनाव में जीतने का बंदोबस्त कर दिया जाता है उसका व्यंग्यात्मक तथा यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है। इसमें प्रदेश के भूतपूर्व एम.एल.ए. ठाकुर साहब अपनी पवित्र (?) चुटिया को लेकर कैसा हंगामा खड़ा कर देते हैं, वह काबिलेगौर है। वस्तुत: ठाकुर साहब आपना एक निहायत ही व्यक्तिगत बैर चुटिया के बहाने पूरा करते हैं, इतना ही नहीं, उसका राजनीतिक दृष्टि से इस्तेमाल करते है। हुआ था यों कि "बम्बई हेयर कटिंग सलून" का हीरो-टाइप लौड़ा ठाकुर साहब के नाखून काटने के लिए मना कर देता है। पर नये कानूनों के रहते वे उसे मार-पीट तो सकते नहीं थे, अत: बदला लेने का बड़ा ही नायाब तरीका ठाकुर साहब ढूंढ निकालते हैं। स्नान के उपरान्त "ओऽम विष्णवे नम:" कहते हुए, सिर पर हाथ फेरते ही उन्हें यह नायाब "आइडिया" सूझता है। वे उस लौंड़े पर आरोप लगाते हैं कि उसने जान-बूझकर उनकी चुटिया को काट डाला और इस प्रकार एक धर्म-प्राण (?) व्यक्ति की भावनाओं और संवेदनाओं के साथ उसने खिलवाड़ किया। बस फिर क्या था ? इस बात को लेकर उन्होंने हंगामा खड़ा कर दिया, उसको एक साम्प्रदायिक कलर दे दिया कि एल.एम.ए. की सीट पर जीतने का पक्का बंदोबस्त कर लिया। इस कहानी में दलित संदर्भ इस रूप में आता है कि वह लौड़ा नाई का लड़का था और नाई का शुमार दलित जातियों में होना है।

"भंवरे की जात" कहानी तो पुरूषों की भ्रमर-वृत्ति को लेकर है, किन्तु उसमें दो स्त्री-चरित्र आते हैं, जो मिरासीनें है। कुंतुली मिरासन नाचने-गाने का काम करती थी, परन्तु अंग्रेज-सरकार के जाने के बाद, उसके इस

धंधे में ऐसी ओट आती है कि उसे नाचने-गाने के साथ शरीर का सौदा भी करना पड़ता है । रामसिंह हवलदार कश्मीर युद्ध-बंदी के समय रीलीज होकर घर लौटता है और अलमोड़ा-रानीखेत के बीच ठेके पर ट्रक चलाने लगता है। ट्रक चलाते-चलाते उसका दिल कुंतुली पर आ जाता है। उसकी यह दिलोजान से चाहने लगता है और इसलिए अपनी ब्याहता औरत रुक्मी को लतिया-लतिया कर निकाल देता है। रूक्मी अपने मैके के गांव काफली जा कर रहने लगती है। रामसिंह अपनी सारी कमाई कुंतुली पर लुटा देता था। अत: रूक्मी की मां कुंतुली के पास जाती है पर कुंतुली की मां चिणकुली उसे निर्दयतापूर्वक निकाल देती है। परन्तु समय का चक्कर कुछ इस तरह घूमता है कि जाति-बाहर होने के डर से रामसिंह कुंतुली को छोड़कर रूक्मी के साथ रहने लगता है और कुंतुली के आकर्षण से बचने के लिए वह उस रूट को ही छोड़ देता है। अत: मां चिणकुली के कहने पर कुंतुली काफली पहुंच जाती है। परन्तु रूक्मी और उसके बच्चे को देखकर कुंतुली के भीतर की और जग जाती है और वह रूक्मी को कहती है ''मै तो नाच-गाके भी जिन्दगी की गाड़ी लूंगी, लेकिन तुम कहां तक मायके में पड़ी रहोगी? मैंने अपना दावा छोड़ा।''[४०] इस प्रकार एक मिरासिन भी उच्च मानवीय गुणों की स्थापना के द्वारा लेखक यह कहना चाहते हैं कि इस प्रकार के उच्च मानवीय मूल्यों पर किसी वर्ण या वर्ग विशेष का ठेका नहीं है।

''बर्फ की चट्टाने'' मानवीय दर्द को उकेरने वाली कहानी है। इस शीर्षक से लेखक का एक कहानी संकलन सन् १९८६ में मुदिता प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। उसके बाद सन् १९९० में सचीन प्रकाशन, नयी दिल्ली से इसी शीर्षक से एक बड़ा वृहदकाय संकलन प्रकाशित हुआ है। दोनों संकलनों में यह कहानी है। कुमाऊं के गरीब वर्ग, जिसमें पिछड़े वर्ण के लोग ही अधिकांशत: है, के जवान प्राय: सेना में भर्ती हो जाते हैं। इस पर गांव का एक उच्च वर्ण का ठाकुर, रतन ठाकुर, जो दुकानदार है, अक्सर फब्तियां कसता रहता है, कि दुनियाभर के भिखमंगे और चिलमनंगे फौज में

भर्ती हो जाते हैं उनका सारा ध्यान अपने घर और बीबी-बच्चों में लगा रहता है, वह भला क्या खाक लड़ेगा ? लड़े तो वह मर्द मराठा, जिसे दमड़ी छाड़ अपनी चमड़ी भी प्यारी न हो। पैसे के पीछे मरने वालों की सारी रूस्तमी तो ऐन मौके पर चर्र बोल जाती है।[४१] या वस्तुत: फौज में भर्ती होने के कारण निम्न वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति में भारी बदलाव आ रहा है। ये लोग आत्मनिर्भर हो रहे है और उस परिमाण में उनका आत्मिक-नैतिक बल भी बढ़ रहा है। फलत: अब ये इन तथाकथित उच्च जाति के लोगों की पहले की सी धौस भी नहीं सह रहे हैं और यही बात रतन ठाकुर जैसे लोगों को साल रही है। वे सीधे मुंह तो कुछ कह नहीं सकते, अत: परोक्ष रूप में इस प्रकार के व्यंग्य-बाण छोड़ते रहते हैं। कथा नायक अपने स्वगत-कथन में कहता है- "काश, रतन ठाकुर, तुम इस बात को समझ पाते कि जिनके भाई-बेटे-पति फौज में होते हैं, लड़ाई के दिनों उन सभी के सुखों को अशुभ आशंकाएं किस तरह घेर लेती हैं। उनके लिए त्यौहार, उत्सव और मेले सब कितने फीके और उदास पड़ जाते हैं । उनकी हर सांस कैसे एकदम उनके कानों के पास सिमटी हुई रहती है, उन दिनों ।"[४२]

'जिबूका' कहानी का जिबूका एक अठंग जुआरी है। उसका परिवार जुआरियों का परिवार कहा जाता था । ध्यान रहे मटियानीजी के परिवार को भी लोग जुआरियों और बूचड़ों का परिवार कहते थे। इस परिवार का जीवन सींगमटेला (जिबूका) पढ़ने में बहुत जहीन था । उसके पिता सबलसिंह उसे पढ़ा-लिखाकर पटवारी बनाना चाहते थे, परंतु उसका भाई खड़कसिंह उससे बहुत जलता था। वह रात-दिन पिता सबलसिंह को जीवनसिंह के बारे में गलत-सलत बताता रहता है और उनका कान भरता रहता है। यहां तक कि खड़कसिंह उस पर झूठा इल्जाम भी लगाता है। फलत: जीवनसिंह गांव से भाग जाता है । कहां तो वह पढ़-लिखकर वह बड़ा आदमी बनना चाहता था, और कहां शहर जाकर एक अठंग जुआरी बन जाता है। सबलसिंह की वैर-वृत्ति के कारण उसके जीवन का लक्ष्य ही बदल जाता है। शहर से जुए के हर

दांव-पेच को सीख कर आता है। जुआ उसे ऐसा फलता है कि गांव में उसके ठाठ-बाठ बढ़ जाते हैं। उसकी लगातार चुनौतियों के कारण एक दिन मटेला बंधुओं में ''द्यूत-प्रतियोगिता'' छिड़ ही जाती है। खड़कसिंह सबकुछ हार जाता है। तब पारबती भौजी के बहुत अनुनय-विनय पर ''जिबूका'' अपने भतीजे दीवान को जान-बूझ कर जीताते हुए वह सबकुछ वापस लौटा देता है । इस प्रकार यह एक चरित्रप्रधान कहानी है। उसमें लेखक ने जिबूका जैसे अठंग जुआरी की मानवता को रेखांकित किया है। जुआरी-कबाबी-शराबियों की जमात को हम दलितों में ही परिगणित करते है। इस रूप में इस कहानी को यहां लिया है।

(ब) नगरीय परिवेश पर आधारित कहानियाँ :-

नगरीय परिवेश में हमने मुंबई, दिल्ली जैसे महानगर तथा इलाहाबाद, नैनिताल अलमोड़ा जैसे छोटे नगरों के परिवेश को लिया है। हमारा सरोकार यहां ''दलित-विमर्श'' से है, अत: उससे सम्बद्ध कहानियों का ही विश्लेषण हमने यहां प्रस्तुत किया है।

(१) चील :-

''चील'' मटियानीजी की एक अत्यंत मार्मिक और दर्दनाक कहानी है। मटियानीजी की श्रेष्ठ कहानियों की यदि संकलित किया जाए तो उसमें इस कहानी को अवश्य रखा जाए, ऐसा हमारा मानना है। इस कहानी के बच्चे रामखेलावन को देखकर चेखोव के वान का बरबस स्मरण हो आता है। कहानी में चील का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ।

एक बार खिलावन के पिता ने उसे कर्नलगंज के रशिदमियां के यहां से आधा किलो गोश्त खरीदकर थमा दिया था कि वह जाकर अपनी अम्मा सतनारायणी को दे दे, जिससे वह पहुंचे उस समय गोश्त पककर तैयार हो जाए । ऐसा सोचकर वह दारू की बोटल का जुगाड़ करने चला गया था। रामखिलावन गोश्त का पुलिन्दा लेकर घर जा ही रहा था कि एक चील

झपट्टा मारकर उसकी पुटली छीन ले जाती है । कुछ बोटियां जमीन पर बिखर गयी थी जिन पर एक कुत्ता झपटता है। तबसे लेकर कालरूपी या भाग्यरूपी चील खिलावन से कुछ न कुछ छिनती ही रही है। पहले मौतरूपी चील ने प्यार-दुलार करने वाली दादी को छिन लिया, फिर बाप को और अन्तत: मां को भी। ध्यान रहे यह कहानी इलाहाबाद के परिवेश को लेकर लिखी गई है।

रामखिलावन का पिता शराबी-जुआरी था। वह जब-तब मां को तथा खिलावन को पीटता रहता था । पर वह प्यार भी खूब करता था रामखिलावन से। जब भी दारू में धुत होकर आता था, रामखिलावन के लिए कुछ न कुछ, चोकलेट-बिस्कुट आदि ले आता था। घर आकर वह लुढ़क जाता । तब दादी उसकी जेबों को टटोलती और उसमें से चोकलेट-बिस्कुट वगैरह निकाल कर रामखिलावन को दे देती है और कुछ पैसों के सिक्के होते तो खुद रख लेती। उसका बाप रामखिलावन को पढ़ाना भी चाहता था, पर खिलावन स्कूल से तखती लेकर भाग आता था । लेकिन वह सिलसिला भी ज्यादा नहीं चला, क्योंकि स्वर-व्यंजन तथा बाराखड़ी की त्रिवेणी वह पार करे उसके पहले ही उसका बाप यह दुनिया पार कर गया ।

रामखिलावन का ध्यान कपड़े लत्तों पर कम, खाने-पीने की चीजों की ओर ही ज्यादा रहता था, क्योंकि जिन्दगी की क्रूरताओं में भूख से ही उसका परिचय ज्यादा था । उसकी आंखें जमीन पर मानो रेंगती रहती थी। बीड़ी-सिगरेट के ठूँठे और कभी-कभी पैसे भी उसे मिल जाते थे। एक बार उसको अठन्नी मिल गयी थी और तब चालीस पैसे की सौ ग्राम जलेबी वह एक साथ खा गया था । इसके बाद फिर वैसी तृप्ति कभी नहीं मिली । पिता की मृत्यु के बाद सतनारायणी कई घरों में बरतन-कपड़े-झाड़ू-पोंछा करके रामखिलावन की परवरिश करती है। सतनारायणी के इन कामों के कारण उसे फटे-पुराने कपड़े, बचा-खुचा खाना और कभी-कभी मिठाई भी मिल जाती थी । परन्तु इधर कई दिनों से सतनारायणी काम पर नहीं जा सकी थी क्योंकि वह बीमार

हो गई थी । उसे दस्त और उल्टियां हो रही थीं । तब मां के स्थान पर एक दिन वह शुक्लाइन के यहां काम करने गया था । परन्तु अभागे ने बरतन मांजते हुए दो चम्मच चुरा लिये थे और शुक्लाइन ने उसे पकड़ लिया था। शुक्ला साहब तो उसकी मां-बहन की गंदी गालियां देकर छोड़ देते हैं, पर शुक्लाइन तो सीधे मां के पास पहुंच जाती है। जिन्दगी में पहली बार वह रामखिलावन को गंदी गालियां देती है और शुक्लाइन के पैर पकड़कर उसकी माफी मांगती है, कि किसी तरह उसका वह काम न छूट जाये। सतनारायणी खिलावन को गालियां देती है पर उसका जी उसके लिए बहुत कलपता है। एक स्थान पर खिलावन मां के बारे में सोचता है-"मां किसी तरह उठी हो या पड़ोस की कोई औरत उसके पास आई हो तो उसने खिलावन के लिए खाने-पीने को कुछ मांगने की कोशिश की हो? इससे पहले कई बार भरपेट भले ही न मिलता रहा हो, लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह लगातार दो दिन भूखा रह गया हो और माने चिन्ता न की हो । मां इतनी क्रूर क्यों हो गई हैं? कुछ ही दिन पहले की बात है कि वह बीमार मां के पास बैठा हुआ था, तभी उसे बिस्तर पर ही कै हो गई थी । खिलावन मां से बिलकुल नहीं घिनाता है। हाथ से ही कै पोंछने लगा था, तो मां फूट-फूट कर रो पड़ी थी और यह कहते हुए उसके होंठ कांप रहे थे कि "तू घबराना मत रे खिलावन! तनिक खटिया पर से उठे, तो तेरी परवरिश तो बेटवा हम।" [४३]

खिलावन ने दो दिन से कुछ खाया नहीं है। मां ने बिस्तर पकड़ लिया है। अत: खिलावन आवारा लड़कों की तरह खुराक की खोज में मारा-मारा फिर रहा है। उसने अपने साथ के छोकरों से सुन रखा था कि आश्रम वाले बाबाजी छोकरों को अपने कमरे में बुलाकर उनको ढेर सारी मिठाई देते हैं। मिठाई की लालच में वह आश्रम के आस-पास भी चक्कर काटता है, पर बाबाजी उसे डांटकर भगा देते हैं, क्योंकि वह बदसूरत और भूतहा लगता है। बाबाजी को शायद नमकीन खूबसूरत लड़कों की जरूरत हो । तब खिलावन अपनी बदसूरती को भी कोसता है। आखिर वह सब्जी मंडी वाले चौराहे की

तरफ निकल जाता है, क्योंकि उधर से मुरदे जाते हैं, जिन पर कई बार जलेबी और पैसे फेंके जाते हैं। पैसे बटोरने वाले लड़कों की भीड़ में वह कई बार शामिल हुआ है। आज भी बड़ी मशक्कत के बाद एक दस पैसे का सिक्का उसे हाथ लगता है। पर कल्लन नामक एक दूसरा लड़का भी उस सिक्के का दावेदार निकलता है। दोनों में खूब मारा-कूटी होती है। आखिर खूब जोर लगाकर खिलावन उस सिक्के को लकर भाग निकलता है। तब कल्लन उसे कहता है-"जो साले, जा, ले जा ! घर पर तेरी अम्मा मरी पड़ी है। साले, तू भी बिखरेगा पैसे अपनी अम्मा की ल्याश पर?"[४४] और खिलावन को लगता है- "कोई चील तेजी से झपट्टा मारती हुई आई है और उसकी मुट्ठी में बंद गोश्त के टुकड़ों को अपने पंजों में दबोच ले गई है।"[४५]

आज कालरूपी-मृत्युरूपी चील ने उसकी मां को उससे छीन लिया था। क्या होगा अब इस बालक का? वह क्या होगा? चोर, उचक्का, बदमाश, उठाईगिर? कहानी का अंत ऐसे अनेक प्रश्नों को जगाता है। और ऐसी कहानियां ही महीनों-बरसों हाण्ट करती रहती हैं। चेखोव का वानका भी एक गुलाम बाल-मजदूर है। पर उसने अभी उम्मीद की डोर को छोड़ा नहीं है, क्योंकि उसका दादा या नाना जिन्दा है। प्रेमचंद के हामिद के पास भी दादी है, अमीना है। इस रूप में रामखिलावन का भाग्य तो और भी मंद है।

(२) पत्थर :-

'पत्थर' कहानी मुंबई के परिवेश पर आधारित है। इसमें भी मुंबई की दलित पलित जिंदगी का आकलन है। जहां तक इस दलित-पलित जीवन का सरोकार है, उसे "दलित-संदर्भ" की कहानी कह सकते हैं। वैसे हमारे इस प्रबंध में मटियानीजी की मुस्लिम परिवेश और मुस्लिम-संदर्भ की कहानियों की चर्चा छठे अध्याय में करने जा रहे हैं। अत: यहां उसकी विशेष चर्चा न करते हुए केवल उल्लेख भर कर रहे हैं। कहानी का 'पत्थर' शब्द प्रतीकात्मक है। कहानी नायक रमजानी एक नंबर का कामचोर और निखट्टू

आदमी है। उसकी बीबी गफूरन एक नेकदिल और मजहबी औरत है। रमजानी कुछ करता-धरता नहीं है और बीबी की मेहनत-मजदूरी पर ऐश करता है। गफूरन खुद मर-खपकर रमजानी को खिलाती-पिलाती है। इतना ही नहीं उसके सारे शौक भी पूरे करती है। रमजानी को पान-सिगरेट, शराब, मटन, बिरयानी की कमी कभी महसूस नहीं होने देती। गफूरन को देखकर मंजुल भगत की अनारों की स्मृति बरबस जहन में कौंध जाती है। मटियानजी की ही ''महाभोज'' कहानी की शिवरत्ती भी इसी तरह की पाक साफ और शौहर-पूजक औरत है। ''हम मर जायेगें, खप जायेंगे'' बस, हमारा आदमी बना रहे। गुजरात में ''वाघरी'' नामक एक खानाबदोश टाइप जाति होती है। उसकी औरतें भी दिनभर मेहनत-मजदूरी करती है और अपने मर्दों और उनके पिल्लों का पेट ही नहीं पालती, बल्कि शाम होने पर उनके लिए ''बाटली या पोटली'' की व्यवस्था भी खुद करती है। अहमदमियां की टोंच पर रमजानी बेटा तो पैदा कर लेता है। पर उसके बाद उसके ऐश और मस्ती के दिन पूरे हो जाते हैं, क्योंकि गफूरन अब पहले की तरह काम नहीं कर सकती थी। मटन-बिरयानी के स्थान पर रोटी और बीड़ी के भी ''बांधे'' पड़ने लगे और तब रमजानी सोचने लगता है कि अहमदमियां के कहने पर बेटा पैदा करवाके उसने कोई मर्दानगी का काम नहीं किया बल्कि निहायत बेवकूफी का काम किया है। अतः बेटा पैदा होने की उसे कोई खास खुशी नहीं होती। अतः अपनी चिढ़ और नाराजगी में वह उसका नाम ''पत्थर'' रख देता है। वस्तुतः कहानी में यह संकेतित हुआ है कि ''पत्थर'' वह बच्चा नहीं, बल्कि रमजानी खुद है, क्योंकि अपना दोजख भरने के लिए वह गफूरन और बच्चे से भी भीख मंगवाता है। इसी संदर्भ में मुंबई के भिखारियों के जीवन के कुछ पक्ष भी यहां उद्घाटित हुए हैं। किन्तु कहानी के अंत में प्रेमचंद कृत ''मैकू'' कहानी और प्रसाद कृत ''मधुआ'' कहानी के नायक की भांति रमजानी का भी ह्दय-परिवर्तन हो जाता है और वह एक ''पत्थर-दिल'' इंसान की जगह मुहब्बत करने वाला शौहर और पिता बन जाता है।

(३) प्यास :-

"प्यास" कहानी भी मटियानीजी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में स्थान पाने योग्य कहानी है। यहां मुबंई की झोपड़पट्टी और फुटपाथों पर रहने वाले लोगों के नग्न-रुग्ण जीवन को निर्ममता के साथ उकेरा गया है। जिन्दगी की इन नग्न वास्तविकताओं से जो लोग नावाकिफ है, वे ही कई बार दु:ख, व्यथा, पीड़ा और संत्रास के रोने रोते रहते हैं। मेरे निर्देशक महोदय का एक शेर है- सच्ची- झूठी, खट्टी-मीठी, स्याह-सफेद जिन्दगी सुख समझाता नहीं, गम को मिले बगैर।[४६] फ्रेंच लेखक एमिल जोला जिन्दगी की नग्न वास्विकताओं गलित-पलित जिन्दगी के चित्रण आदि के लिए प्रसिद्ध है। मटियानीजी की यह कहानी भी उसी रेंज में आती है। जिस प्रकार जोला ऐसी गलित-पलित जिन्दगी में भी कई बार ऐसे चरित्र ढूंढ लाते हैं, जिनमें मानवता के दीये कहीं न कहीं टिमटिमाते नजर आते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत कहानी की कृष्णाबाई पाठक के मन-मस्तिष्क का कब्जा ले सकती है। जिस प्रकार जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के "मुर्दाघर" तथा मराठी लेखक जयंत दळवी के "चक्र" में मुबंई के दारू-मटका वाले उठाईगिर, पाकेटमार और भिखारियों का संसार दृष्टिगोचर होता है, ठीक उसी संसार का यथार्थ चित्रण यहां कहानीकार ने किया है।

यहां पाण्डुरंग मामा है जिन्होंने भीख के काम को भी एक व्यावसायिक स्पर्श दिया है। उनकी व्यावसायिक केरियर ४२ साल की है, जिसमें १० उन्होंने खुद भीख मांगकर और ३२ साल दूसरों से खुद भीख मंगवाकर, मजे से अपनी जिन्दगी काट रहे हैं। इसमें ताराबाई, कृष्णाबाई जैसी भिखारिनें है। इसमें जेकब दादा है जो दारू की हेरा-फेरी का काम करते हैं। इसमें कादिर उस्ताद जैसे उस्ताद है जो इस फुटपाथ युनिवर्सटी के प्रोफेसर है। कहानी में शंकरिया नामक लड़के को हम बच्चे से जवान होते हुए देखते है। पाण्डुरंग मामा उसे भीख-कला की ट्रेनिंग देते हैं, जेकब दादा उसे दारू की हेरा-फेरी का मास्टर बनाते हैं तो कादिर उस्ताद उसे जेबकतरे की विद्या की मास्टर

डिग्री ही थमा देते हैं। दारू के धंधे में जब उसे जेल हो जाती है तब उसे "धारवाड़" की बच्चों की जेल में भेज दिया जाता है। जेल क्या है, बच्चों को क्रिमिनल बनाने का कारखाना समझ लीजिए। वहां वार्डर, चौकीदार और पुलिस उसके साथ अमानुषी व्यवहार करते हैं। वहीं जेल में ही उसकी मुलाकात यासीन से हुई थी, जो उसे जेल से छूटने के बाद बांदरा के कादिर उस्ताद के पास ले गया था। कादिर उस्ताद का परिचय उनके ही शब्दों में - "बेटे, वफादरी से काम करेगा, तो तेरी उंगलियों में जादूई कबूतर बांध दूंगा, जादुई कबूतर। फिर जिसकी गिरह में सींक फंसाएगा, जादुई परिन्दे खंजूरछाप नोटों की गड्डियां बाहर खींच लाएंगे।"[४७]

ताराबाई के मतानुसार शंकरिया एक कश्मिरी सेठ का लड़का है। कश्मिरी सेठ को एक हैदराबादी कामवाली से इश्क हो गया था। गर्भ रह जाने पर सेठ उसको निकाल देता है। बाद में वह कामवाली भी मर गई थी। नगरपालिका की कचरा उठाने वाली गाड़ी के ड्राईवर को वह बच्चा फुटपाथ पर लावारिस हालत में मिला था। उन लोगों ने उसे अनाथालय के हवाले कर दिया था। पांडुरंग मामा को इसकी खबर अपने नेटवर्क के कारण होती है, अत: पचास रूपये रोकड़े और मामा के रिश्ते का हवाल देकर वह शंकरिया को अनाथालय से ले आया था। कृष्णाबाई का आदमी रेल-दुर्घटना में मर गया था, तबसे भीख मांगकर वह अपना गुजारा करती है। पर बच्चेवाली भिखारिनों को ज्यादा भीख मिलती है, अत: उसने पांडुरंग मामा को एडवांस में कटकर रखा था कि कोई बच्चा उसके हाथ में आवे तो वह सबसे पहले वह उससे बात करे। अत: अनाथालय से बच्चा मिलते ही पांडुरंग मामा कृष्णाबाई से बात करता है। यथा- "बाई, नकद पचास की रकम और भांजे का रिश्ता लगाकर इस छोकरे को खरीदा है। सूरत का गोरा और खूबसूरत है। भीख मांगते समय होशियारी से काम लोगी, तो चांदी पिटवा देगा छोकरा। किसी ऊंचे घराने की लक्ष्मी की औलाद मालूम पड़ता है। नामे का सिकन्दर निकलेगा। तो बाई, जब तक तू इस छोकरे से बिजनेस करेगी, एक रूपया

रोज लूंगा और अगर तुम्हारी किसी लापरवाही या बीमारी से यह मर गया तो तुम्हें पूरे पचास की रकम एक मुश्त में देनी होगी।''[४८]

इस पर ननानुच करते हुए कृष्णाबाई कहती है कि यह बच्चा तो मस्के की टिकिया के माफिक है, झोपड़पट्टी का नहीं है। सो ज्यादा तकलीफ बरदाश्त नहीं कर सकता और ऐसे में यह गर गुजर गया तो एक साथ पचास रूपया में कैसे लाऊंगी। कृष्णाबाई के इस तर्क के जवाब में पाण्डु मामा जो कहते हैं, वह पांडु मामा ही कह सकते हैं, जिसमें ''भीख-कला''का राज छिपा हुआ है- ''तो रैन दे रे फिर, बाई। हो गया तुम्हारा धंधा। अरी, कमअकल। जब तक जिन्दा रहेगा तब तक तो चांदी ही पिटवायेगा छोकरा तेरे लिए, मगर जिस दिन मर गया, उस दिन अशर्फियां उगल देगा, अशर्फियां। बाई फकत एक गज लाल कफ़न का कपड़ा खरीद के अपने इसक लेजे के टुकड़े को माहिम के कब्रस्तान में दफन करने या सोनपुर के स्मशान में फूंकने के लिए भीख़ मांगते-मांगते एक ही दिन में सौ-डेढ सौ पीट लेगी। और छोकरे की मिट्टी को इस सर्दी के मौसम में दो-तीन दिनों तक सही-सलामत रखना कोई बड़ी बात नहीं। और तीन दिनों में तो पूरे बम्बई शहर में फिराई जा सकती है मिट्टी।... गोरे छोकरे की लाश ये काले छोकरों की लाशों की बनिस्बत दस गुना ज्यादा नामा इकट्ठा किया जा सकता है। पिछले बरस तेरा गोरा-चिट्टा बेट मर गया, तो तूने कितना।''[४९] मुंबई में मृत व्यक्ति की लाश को ये लोग मिट्टी कहते है और कई बार तो भीख मांगने के लिए भी लाशें खरीदी जाती है। इस बात पर किसी को घिन आ सकती है। पर यह बात एक जमीनी हकीकत है। उसे हम नकार नहीं सकते। कहानी की कृष्णाबाई एक भिखारिन है। भीख मांगने के लिए ही वह शंकरिया को मामा से खरीदती है। पर उसके भीतर एक मां का हृदय भी है। वह शंकरिया को अपने बेटे की तरह रखती है, इतना ही नहीं, बल्कि उसे बचाने के लिए खुद रेल के नीचे कटकर मर ज़ाती है। कृष्णाबाई के बाद शंकरिया का हवाला ताराबाई संभालती है, जो भिखारिन भी है और मामा

की रखैल भी। शंकरिया की भीख से ताराबाई के दारू का खर्चा चलता है। इस प्रकार यह कहानी मुंबई के दलित-पलित जिन्दगी के घिनौने रूप की तस्वीर हमारे सामने पेश करती है।

(४) महाभोज :-

प्रस्तुत कहानी का परिवेश इलाहाबाद का है। इस कहानी की शिवरती को देखकर मंजुल भगत की अनारो का स्मरण बरबस हो आता है। उसका पति चेतराम कई महिनों से बेकार है। घर में चार बच्चे हैं, चेतराम का बीमार बाप है, उसके दवा-दारू का खर्चा है, पर शिवरती है कि उसके मुंह से उफ तक नहीं निकलता। मेहनत-मजदूरी करके वह संसार की गाड़ी किसी तरह खींच रही है। वह एक संघर्षशील जुझारू किसम की औरत है। चेतराम का बाप जब मर जाता है तब चेतराम तो कह देता है कि बिरादरी को खिलाने का नेग वह नहीं निभा सकता। पर तब शिवरती अपनी चांदी की करधनी बेचकर सारा कारज निबटाती है। यह करधनी उसका एक मात्र सहारा थी। पर वह उसे बेच देती है। उस समय का उसका कथन उसे दो बालिशत ऊपर उठा देता है- ''मोती के बापू, बाप के मरने का रोना सभी मरदों को शोभा देता है, पर तुम्हारा यह जोरू के आगे का रोना मुझे बर्दाश्त न होगा। अरे बेवकूफ में किसी राह चलते की बेसवा हूं, या तुम्हारी घरवाली हूँ ? जिस बहुरिया से अपनी घर-गिरस्ती ही न सधी उसका तो मीरगंज में जा बेठना ही भला।''[५०]

कहानी का शीर्षक है- ''महाभोज''। मृत्यु के बाद जो बिरादरी वालों को भोज करवाया जाता है उसे ''महाभोज'' कहा गया है। परन्तु यहा शिवरती जो करवाती है वह सचमुच में-''महाभोज ही है। उसके सामने बड़े-बड़े भोज फीके पड़ जाते हैं। अपना सर्वस्व बेचकर अपने पति की ''मरजादा'' का ख्याल रखना शिवरती ही कर सकती है। कोई दूसरी औरत होती तो चेतराम के बेरोजगार होने का बहाना करके साफ किनारा कर जाती। किन्तु शिवरती

जीते जी अपने ससुर की दवा-दारू भी करवाती है और उसके मरने के बाद उसका कारज भी करती है। पर शिवरती के चरित्र की "हाईट" तो वहाँ दिखती है, जब वह चेतराम को मीरगंज जाने के लिए उसके हाथ में तीन रूपया रख देती है। शिवरती के चार बच्चे है, पांचवा आनेवाला है। ऐसे में बेकार- निठल्ले चेतराम को शरीर-सुख की इच्छा होती है। तब शिवरती चेतराम को कहती है- "मोती के बापू, दम तोड़ते बाप की नाक के नीचे की यह बेहयाई ठीक नहीं। आनऔलाद पर बुरा असर पड़ता है।"[५१] उस समय चेतराम शिवरती से कुछ पैसे मांगता है कि जी बहुत खराब हो रहा है। वह कुछ रूपये दे तो वह मीरगंज वाली सलीमा (एक वेश्या) के यहां जाना चाहता है। तब कुछ भी बोले बिना वह तीन रूपये उसके हाथ में रख देती है और कहती है- "तुममें लम्बी बीमारी के बाद अब बर्दाश्त भी तो नहीं रही।"[५२] इस प्रकार शिवरती के चरित्र के द्वारा लेखक ने एक महान नारी-पात्र का सर्जन किया है। यहां पर कोई "मोरालिस्ट" सवाल उठा सकता है कि ससुर के पीछे मृत्युभोज देना और पात को वेश्या के पास जाने के लिए पैसा देना इनमें कौन-से ऊंचे जीवन-मूल्यों की रक्षा हुई है। इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि मनुष्य केवल बुद्धि ही नहीं है, भावना भी है, हृदय भी है। दूसरे हमें इन पात्रों का मूल्यांकन उनके सही परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए। चेतराम शिवरती की ताबेदारी मानता है कि अगर कोई अकड़ू औरत हो तो उसे पीटा भी जा सकता है, पर उसकी भलमनसाहत के आगे वह निरस्त्र हो जाता है।

(५) गोपुली गफूरन :-

"गोपुली गफूरन" मटियानीजी की एक चर्चित कहानी है। गोपुली देवराम शिल्पकार की पत्नी थी, बाद में वह अहमदअली फड़वाले के घर बैठ जाती है और "गोपुली" से "गफूरन" हो जाती है। इसलिए यह कहानी दलित-संदर्भ की भी है और मुस्लिम-संदर्भ की भी। इस विचार-सूत्र

को लेकर मटियानीजी ने एक उपन्यास की भी रचना की है। गोपुली का पति देवराम एक शिल्पकार है। पहाड़ों में डोम-चमार आदि को शिल्पकार कहा जाता है, विशेषत: उनको जो कोई कारीगरी का काम करते हैं। देवराम टट्हा है और तांबे के कलश बनाने के हुनर में पूरे अल्मोड़ा ज्वार में उसका कोई जवाब नहीं है। देवराम एक अच्छा कारीगर तो है ही, पर उसके कलशों की चर्चा और ख्याति के पीछे किरपालदत्त पुरोहित का भी योगदान कम नहीं है, क्योंकि किरपालदत्तजी अपने जजमानों को देवराम से ही कलश खरीदने की सलाह देते हैं। पुरोहितजी देवराम पर इतने मेहरबान इसलिए है कि गोपुली को देखकर उनकी लार टपकने लगती है और गोपुली भी कभी-कभी पुरोहितजी को स्पर्श सुख, एक सीमा में रहकर, दे देती है। जैसे ही पुरोहितजी अपनी हद पार करते, गोपुली'' ''पंडिताइनजी'' का डर दिखाकर वहां से खिसक लेती थी। और पुरोहितजी एक अलग किसम के नशे में डूबकियां लेने लगते थे।

एक समय था कि अल्मोड़ा के बाजार में गोपुली के नाम का डंका बजता था। वैसे देखा जाए तो गोपुली को कोई बहुत सुंदर नहीं कह सकता था। पर उसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा चुंबकीय जादू था कि पुरुषरूपी किटक उसकी तरफ बरबस खींच आते थे। किरपाल दत्तजी पुरोहित के अलावा गोपुली के चाहने वालों में खीमसिंह होटलवाला, गोपाल शाह, प्रोफेसर तिवारी, अहमदअली फड़वाला, आदि करीब-क़रीब अल्मोड़ा मेइन बाजार के सभी बड़े लोग आ जाते हैं। खीमसिंह होटलवाला गोपुली को ''गजगामिनी, मिरगलोचनी, चन्द्रमुखी, मनमोहिनी,'' आदि कहता था, तो गोपाल शाह उसे कुत्ते के नीचे का कपास का गद्दा कहता था। गुजराती में एक कहावत प्रचालित है- ''कांगड़ो दैथरुं लई गयो''.... किसी सामान्य से आदमी की औरत यदि खूबसूरत होती है, तो उसे देखकर जलने वाले इस कहावत का प्रयोग करते हैं। अभिप्राय यह कि कहां गोपुली और कहां देवराम। वैसे खीमसिंह होटलवाला गोपुली को कई बार ''गजगामिनी'' के स्थान पर

"गजगाभिनी" कहता था, तब किरपाल दत्त गुरू उसे टोक देते थे कि "यार ठाकुर, गजगामिनी होता है, ग़जगाभिनी" नहीं, तब खीमसिंह ठिठोली पर उतर आता - "ऐसी मस्त तिरिया को गज के अलावा गाभन भी कौन बना सकता है?"[५३] तो प्रोफेसर तिवारी की रायल लैंग्वेज में गोपुली अल्मोड़ा शहर के दुकानदारों की कंजड़-बुद्धि के लिए "आई क्यू" और दूसरे कई लोगों के लिए "लिविंग स्टैण्डर्ड" और कैरेक्टर का क्राइटेरिया थी।[५४]

गोपुली को भी शुरू-शुरू में यह अच्छा नहीं लगता था। पर उसने अनुभव किया कि इन सबसे उन लोगों का व्यवसाय अच्छी तरह चल रहा है, अत: एक व्यावसायिक "टैक्ट" की तरह उसने इस अंगीकृत कर लिया था, और फिर तो वह खुद भी इन सबकी इतनी आदी हो चुकी थी कि उसके गुजरने पर यदि ऐसी कोई "कोमेण्ट" न होती तो उसे खाना हजम नहीं होता था। कभी गोपुली सामने से चलाकर किरपाल दत्त गुरू से पूछती कि "क्यों हो गुरू? कलशों की जरूरत है? मेरे देवराम कह रहे थे कि गुरू से पूछ आना जरा ?" गोपुली की इतनी सी बात पर गुरू गदगदान होते हुए उसे अपने गोठवाले कमरे में खींच लेते और उसके कर्णफूल जैसे उरोजों पर हाथ फिराते हुए कहते - "गोपू मुझे तो तेरे इन" कलशों की जरूरत है।"[५५] इस पर छि: छि: करते हुए गोपुली कहती -"कोई देख लेगा तो तुमको क्या कहेगा ? अच्छा हो गुरू, अब में चलती हूं। अपने चित्त को ज्यादा चलायमान मत किया करो। ऊपर से कभी बौराणीज्यू की नजर पड़ गयी थी तो?"[५६] इस प्रकार गोपुली एक चतुर नायिका है। उसकी निष्ठा तो एक-मात्र अपने पति देवराम के पति है, पर दूसरे लोगों को वह अपने "नाजोअंदाज" से घायल करती रहती है और लोगों को भी उसमें एक अनोखा आनंद प्राप्त होता है। इस "सीमरिंग" की कला को गोपुली ने अनुभव से हस्तगत कर लिया है। किसको कितनी ढील देनी और कहां पर "ब्रेक" मार देनी है, इसे गोपुली अच्छी तरह से जान गई है।

किन्तु गोपुली के भाग्य में ये मोज-मस्ती के दिन ज्यादा नहीं बचे थे।

देवराम की अकाल मौत उसका सबकुछ छीन लेती है। उसकी जाति-बिरादरी, वाले उससे पहले से ही खार खाए बैठे थे, लिहाजा आसरा देने के बदले ताने-तिसने देते हैं। कहावत है- ''जब तक मालिक तब तक खालिक'' - पहले गोपुली के साथ राग-रंग मनाने के इच्छुक लोग एक-एक करके किनारा कर जाते हैं। खीमसिंह होटलवाला गोपुली को शिकार भटुआ तो खिला सकता था, पर गोपुली के बच्चों के पालन-पोषण का खर्चा वह नहीं उठा सकता था। किरपाल गुरू गोपुली को मदद करने को तैयार थे, पर गोपुली के पास वह हुनर नहीं था, जो देवराम के पास था। परिणाम स्वरूप थक-हारकर ''गोपुली'' को ''गफूरन'' बनना पड़ता है। अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए धर्म-परिवर्तन उसे करना पड़ता है। वह अहमद अली फड़वाले की घरवाली बन जाती है। छोटी जाति की स्त्रियां धर्म-परिवर्तन क्यों करती है, उसके कारणों की सामाजिक पड़ताल यहां लेखकने की है। अहमद अली हरराम और नरराम का खतना करवा देता है और उनके नाम बदल जाते हैं... हसरत अली और नसरत अली। देवराम के यहां गोपुली स्वतंत्र-स्वच्छंद और उनुमुक्त थी। अहमद अली के यहां उसका दम घुटने लगता है। पर जीत, महतारी गोपुली ''मद मस्त गोपुली'' से जीत जाती है।

(६) मिट्टी :-

''मिट्टी'' मटियानीजी की एक अमर कहानी है। मटियानीजी के अनुभव का संसार कहां-कहां तक जाता है, इसे इस कहानी के मानवीय संस्पर्शों से देखा जा सकता है। कहानी इलाहाबाद के परिवेश और भिखारी-जीवन पर आधारित है। वैसे ''मिट्टी'' माटी या जमीन को कहा जाता है, पर उसका लाक्षणिक अर्थ मृतक व्यक्ति या मुर्दा होता है। इस कहानी के मुख्य पात्र है.... गनेशी नामक एक मुसीबतजदा, लाचार और मजबूर औरत और लालमन नामक एक कोढी। वैसे है तो ये लोग जिन्दा इंसान, पर उनकी जिन्दगी ऐसी दलित-गलित है कि जीते-जी वे ''मिट्टी के समान है।

जिस प्रकार ''प्यास'' कहानी की कृष्णाबाई भीख मांगने के लिए पांडुरंग मामा से एक बच्चा किराये पर लेती है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत कहानी की गनेशी अपने दो बच्चों...ननकू और लछमन के पालन-पोषण के लिए, लालमन नामक कोढी के साथ रह रही थी। वह लालमन की गाड़ी घुमाती है, उसका गू-मूतर साफ करती है, उसे नहलाती और धुलाती है। रात को उसके गोड़ भी दबाती है। संक्षेप में वह सब काम करती है जो कभी सगी औरत भी नहीं करती या नहीं कर सकती। इस पर लालमन एक नंबर का गंदा-गोबरा और मीठे का लालची है। फलतः उसे जब-तब दस्त लग जाते हैं। उसे साफ करने में गनेशी का जी-मन खूब घीनाता है, पर मन-मारके उसे यह सब करना पड़ता है। लालमन से पहले गनेशी के जीवन में तीन पुरूष आते हैं जो अपना स्वार्थ पूरा होने पर उसे छोड़ देते हैं। बल्कि उनके कारण उसे इन दो बच्चों का बोझ भी उठाना पड़ रहा था। पर गनेशी को ये बच्चे बोझरूप नहीं लगते। गनेशी एक स्वप्न जीवी औरत है। पहले वे किसी भले आदमी के साथ घर-गृहस्थी बसाने का स्वप्न देखती थी, पर वहां सिवाय धोके के उसे कुछ भी हासिल नहीं होता। आजकल वह अपने इन दो बच्चों को लेकर सपने देख रही है कि लालमन के लुढकने से पहले वह अगर चार-सौ, पांच सौ रूपये जोड़ लेती है तो बाद में पान की गुमटी लगाकर इनकी अच्छे से परवरिश कर सकती है। इन दो बेटों को लेकर उसकी आंखों में सपने तैरने लगते हैं-''जब भी वह कल्पना करती है कि ये दो बेटे मरते दम तक उसके साथ ही रहेंगे और चाहें रिक्शा-मजूरी करे, चाय-पान की गुमटी चलाएं, सास कि तरह घर चलाने का अवसर भी कभी उसे मिलेगा।''[५७]

गनेशी और लालमन में कई बार कुछ बातों को लेकर कहा-सुनी भी हो जाती है, पर दोनों के अपने-अपने स्वार्थ है। दोनों इसी स्वार्थ-डोर से बंधे हुए है तथापि लेखक ने ऐसे पलित-जीवन के लोगों में भी मानवीय मूल्यों को उजागर किया है। कहानी के प्रारंभ में ही उनका यह वार्तालाप आता है ए गनेशी, यही किनारे लगा ले हमको बिठाकर, गाड़ी में रेजगारी

इकट्ठा कर ले। तनिक निबट ले, साफ-सफाई हो जाये, तो चंदर हलवाई की दुकान से पाव पर जलेबी लेती आना। अभी गरम-गरम छनती होगी। तुमको ससुर बहुत गंदी आदत पड़ गयी लालमन। हगे के बखत भी खाने-पीने की रट लगाए रहते हैं। पचावे की ताकत तो तुम्हारे देह में रही नहीं, मार मीठी चीजें भकोसे जाते हो। दस्त रूके भी तो कैसे ससुर? धोवत-धोवत हमारा जी गंधाय। .....इस पर लालमन कहता है- अब आगे-आगे कहा अल्लापुर लेती जाओगी ? यहां जी टूट रहा है, बर्दाश्त नहीं किया। ये जो ससुर गाड़ी में दायें-बायें बछड़ों की तरह लगे हैं, इन्हें कुछ नहीं बोलोगी। मीठा देखते ही ससुर लार छोड़ने लगते हैं। तुम्हें तो हमारा ही खाया-हगा ज्यास्ती दिखेगा। आखिर अपने राम तेरे लगते ही कोन-से खसम है? भाड़े के टट्टू की हरी-सूखी की फिकर कौन करता है? बहुत जी घिनाय गया होय हमसे, तो ऐसे ही छोड़ के चली जा। हम करम फूटो से परमात्मा घिनाय गया तू तो आखिर पराई औरत है।''[५८]

पर अपने स्वार्थ के कारण लालमन को ''डायबीटीज'' का झूठा डर दिखाने वाली गनेशी भी एक स्थान पर भावुक होकर कहती है....''तू क्या मुझे निरा लालची समझता है कि इन बच्चों के स्वार्थ से ही तेरे साथ लगी हूं? स्वार्थ तो सारे संसार में है लालमन। इसी से दुनिया बंधी है, लेकिन इंसानियत भी कोई चीज है। सभी ससुरे नास-पीटे अच्छे-अच्छे बाबू लोग लार गिराते थे। खेर, पेट में गये भात को चावलों की तरह बीनने से कुछ हाथ थोड़े लगता है। पहले भी तीन हुए। एक-एक करके कोन कुत्ते के पिल्लों की तरह खिसका, ऊपरवाला जाने पंछियों का सा नाता निभाना था सो निभा दिया। भगवान की बहुत बड़ी किरपा रही, जो लड़की-बिटिया नहीं दिया, नहीं तो जनम भर दुर्गत देखनी पड़ती। अब तो बस, इन दोनों पर प्राण टिके है। अपना खाया तो हराम लगता है, इनके मुंह में जाता दाना मोती है। और सुन, लालमन, अभी कौनसी लाइलाज हालत में तेरी बीमारी पहुंच गई। एक-दो जलेबी दही के साथ खा लिया करना।''[५९]

इस प्रकार इन भिखमंगों से पात्रों में भी मानवता के दीये टिमटिमाते नजर अ ाते हैं। गुजराती के साहित्यकार झवेरचंद मेघाणी की एक पुस्तक का स्मरण हो आता है।'' माणसाई ना दीवा'' । अर्थात् इंसानियत के दीय''। तो दूसरी तरफ लालमन जो बार-बार गनेशी की दुखती रग पर हाथ रख देता है, एक स्थान पर भावुक क्षणों में कहता है- ''अब तो मेरी मां, बहन, जारू जा है, सब तू है गनेशी। भगवान श्रीराम का नाम भी तेरे बाद में ही रह गया। कला से जा ससुरा जलेबी खाये, वह तेरा ही गू खाये। अपंग-अपाहिज हूं मेरे कहे सुन को अपने बच्चों का कहा सुना मान लेना।....हम अपंग अपाहिजों की जिन्दगी तो ढोर-जानवरों की तरह कटती है, मेरी भी कट गयी। अब तो साठ होने को आये होंगे। यह ससुरी चीनी की बीमारी जान भले ही ले जाए, लेकिन तूने माई की याद दिला दी आज। अपने जिन खसमों के किस्से तू सुनाया करती थी, वे तो ससुरे कुत्तों की तरह सवारी गांठ के निकल गये। लेकिन यकीन मान, जो तेरे ये दो बच्चे हे ना, मेरे मर जाने पर मेरे गोश्त से भी इनकी भलाई होती हो, तो लालमन यूं नहीं करेगा।''[६०]

यहाँ कोई यह समझने की गलती न करे की यह तो भावुकता की रौं में कहीं हुई बातें है, इनका क्या? परन्तु इस प्रकार के जीवन और अनुभव जो दुपरदु हुए हैं वे कह सकते हैं कि इनकी - ''मिट्टी'', सचमुच में सोना है। वक्त आने पर ये लोग कुछ भी कर गुजरने का माददा रखते हैं। और अन्तत: बीमारी का यह डर ही लालमन को ले डूबता है। उसी रात उसकी मृत्यु हो जाती है और गनेशी फिर अनाथ हो जाती है।

(७) दो दु:खों का एक सुख :-

''दो दु:खों का एक सुख'' मिरदुला कानी, करमिया कोढी और अंधे सूरदास की कहानी है। ये तीनों भिखारी हैं। इस कहानी का परिवेश अल्मोड़ा का है। ये तीनों अल्मोड़ा के मंदिरों के सामने भीख मांगकर अपना

गुजारा करते है। ये तीनों में समानता यह है कि तीनों किसी न किसी तरह अंग-भंग है। मिरदुला (नाम तो मृदुला रहा होगा) कानी है, करमिया कोदी है और सूरदास अंधा है। इन तीनों की मजबूरी उनके सह अस्तित्व का कारण है। जिस तरह मिट्टी कहानी की गनेशी को भीख मांगने के लिए किसी न किसी पुरूष भिखारी का सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार मिरदुला भी इन लोगों के साथ रहने के लिए मजबूर है। वैसे तो मिरदुला पहले जगत मिस्त्री नामक एक डोम के साथ रहती थी क्योंकि वही उसे मेले से उठा लाया था। वह जाति से ब्राह्मणी थी, पर कानी होने के कारण न उसके, मां-बापू ने उसका ध्यान रखा न रिश्तेदोरों ने। अत: एक बार बहला-फुसलाकर मणिहार कलारों का एक समूह उसे एक मेले में ले गया और वहाँ उसे बेइज्जत करके वे लोग नौ-दो ग्यारह हो गया। ऐसी बेसहाय हालत में उसे जगत मिस्त्री मिल गया जो उसे अपने स्वार्थ के लिए अल्मोड़ा ले आया। वह उससे भीख मंगवाता है, कभी कभार अपनी जिस्मानी आग भी बुझाता है और उसे खूब मारता-पिटता रहता है। करिमया के आगे वह अपनी करम कहानी सुनाते हुए रो पड़ती है। क्योंकि उसके एक दिन पहले जगत मिस्त्री ने बुरी तरह से उसकी पिटाई की थी। बात यह थी कि उसने अपने पुरे दिन की कमाई रामलीला वालों को चन्द में दे दी थी। मिरदुला कुछ धार्मिक स्वभाव की थी और कभी कभार अपनी कमाई से दो-चार रूपया दान भी कर दिया करती थी, ताकि दूसरे जनम में ऐसी दुर्गति न हो। ब्राह्मणजी होते हुए एक डोम के घर पड़ी है, इस बात को भी उसे बहुत मलाल है। वह करमिया कोढ़ी को एक स्थान पर कहती है -"हे राम ! कैसा पलित जीवन दिया मुझ अभागिन को? कोमड़े के घर पड़ी हुई हूँ। भीख मांगकर जीवन काटती हूं। इस पर भी अपना कोई वश नहीं।"[६१]

करमिया भी मिरदुला की मजबूरी से भरपूर फायदा उठाना चाहता है। उसके पास शहर से दूर एक खंडरहरनुमा धर्मशाला जैसी जगह थी। वह उसमें रहता था। वह मिरदुला को समझाता है कि भिखारियों की कोई जाति या

धरम नहीं होता। भिखारी ही दूसरे भिखारी की मजबूरी और दु:खों को समझ सकता है। वह जानता है कि मिरदुला उस अकेले के साथ रहने के लिए राजी नहीं होगी। अत: वह अंधे सूरदास को भी पटा लेता है। मिरदुला जगत मिस्त्री को छोड़कर करमिया और सूरदास के साथ चली जाती है। इस वक्त वह इन दोनों के साथ रह रही है। साथ रहते-रहते वह उनको चाहने लगी है। वैसे मिरदुला सूरदास को ज्यादा चाहती है क्योंकि वह जवान भी है और सुरीला भी। पर इन दोनों में मिरदुला को लेकर अक्सर कहा सुनी हो जाती है। करमिया कोढी है और सूरदास अंधा और इन दोनों के बीच एक मिरदुला है यही है ''दो दु:खों का एक सुख'' की कहानी।

किन्तु इस कहानी का एक दूसरा अर्थ आगे चलकर तब खुलता है जब मिरदुला गर्भवती होती है। करमिया कोढी यह समझता है कि यह बच्चा उसका होगा। और सूरदास सोचता है कि बच्चा उसका होगा। फलत: ये दोनों चाहते है कि बच्चा उनके जैसा हो। यहां लेखक ने मानव मन की एक कमजोरी को पकड़ा है। मां-बाप अपंग-अपाहिज भले हो पर वे कभी नहीं चाहते कि उनका बच्चा उनके जैसा हो पर यहां ये दोनों ऐसा चाहते हैं क्योंकि एक मिरदुला के बीच ये दो हैं और उन्हें मालूम नहीं कि बच्चा किसके गर्भ से है। फलत: बच्चे की अपाहिजता ही उनके प्रश्न और शंका का समाधान है। जब मिरदुला को दर्द उठता है तब करमिया एक दाई को बुला लाता है। वह बच्चे का जनम करवाते हुए कहती है - ''लो रे, तुम अपाहिजों के घर दीपक जल गया।... भगवान की माया कौन जान सका। कोढी-अंधों की औलाद और दीये जैसी जाते देती आंखे। गोरा चिट्टा रंग। अच्छा हुआ कानी पर ही गया बच्चा। अब जरा दस पांच दिन इसके खाने पीने का जतन रखना। पंडिताइन के यहां से दलिया हलवा बनवा लाना। बड़ी दयावान औरत है। कानी के भजन बहुत सुने है उसने अब भोजन की बारी है।''[६२]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी की मिरदुला कानी भले जन्म से ब्राह्मणी है पर डोम के यहां रह चुकी है। भीख मांगकर अपना निर्वाह करती है अत:

उसका जीवन तो किसी दलित से भी गया गुजरा है करमिया कोढी मुसलमान है पर भिखारी है। सूरदास की भी जात-पांत का कोई पता नहीं। वस्तुत: उनकी बिरादरी भिखारियों की बिरादरी है जिसको हमने दलित-जीवन के अंतर्गत ही लिया है।

(८) एक कोप चा : दो खारी बिस्किट :-

एक कोप चा : दो खारी बिस्किट मुंबई के गार्हित-गलित जीवन पर आधारित कहानी है। इस कहानी को पढ़कर मुझे मेरे निर्देशक महोदय डॉ. पारूकान्त देसाईजी की एक कविता का स्मरण हो आता है दो तरह का नंगापन !/ गरीब और अमीर नंगापन/ मासूम और जहरीला नंगापन/ मजबूर और मगरूर नंगापन।[६३] प्रस्तुत कहानी में भी इन दो प्रकार के नंगापन का नग्न चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसमें एक तरह नसीम और करावा जैसी लड़कियां है जो पेट की आग बुझाने के लिए अपने शरीर का सौदा करती हैं। भयंकर लाचारदर्जी और गरीबी के कारण उन्हें अपने बोसों और बोटियों का सौदा करना पड़ता है। दूसरी तरफ वैभव विलास में पली हुई गदराये शरीर वाली सेठानियाँ हैं जो अपने बूढ़े पतियों द्वारा असंतुष्ट रह जाने पर जिस्मानी आग बुझाने के लिए नये-नये शिकारों की खोज में रहती है। वे जवान नौकरों, ड्राइवरों, मालियों, रामाओं, सोफरों द्वारा अपनी वासना पूर्ति करती है। मटियानीजी ने अन्यत्र अपने ''कबूतरनामा'' और ''किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई'' जैसे उपन्यासों में इस प्रकार कि सेठानियों का यथार्थ चित्रण किया है। इस कहानी का रामन्ना मुंबई में मवालीगिरी और आवारागर्दी करके अपना पेट पालता है। उसकी दुनिया भी फुटपाथों की दुनिया है । रामन्ना के शब्दों में पहले प्रकार की लड़कियां जो किसी मजबूरी में अपने प्यार का सौदा करती हैं। ''मायूसी'' कहलाती है और कारवाली सेठानियां ''फण्टूसी'' कहालती है । मटियानीजी की इन कहानियों को भी हम दलित-जीवन की कहानियों मानते है जिनमें नसीम और करावा जैसी

फुटपाथी वेश्याओं के जीवन को चित्रित किया गया है।

कहानी की नायिका नसीम है। वह रामन्ना को चाहती है पर पेट की आग बुझाने के लिए उसे दूसरे लोगों के साथ भी सोना पड़ता है। ''मायूसी'' और ''फण्टूसी'' की भांति रामन्ना ''उल्फत'' और ''मुहब्बत'' शब्दों का प्रयोग भी करता है। कारवाली बाइयों के साथ मजा मारने को वह ''उल्फत'' कहता है और नसीम जैसी लड़कियों को प्यार देने को वह मुहब्बत का नाम देता है पहले में पैसा मिलता है, दूसरे में पैसा जाता है । पहले में जहर मिलता है, दूसरे में अमृत । उल्फत रामन्ना कि जिन्दगी का टेस्ट है मजा है जबकि मुहब्बत उसकी जिन्दगी का दर्द है। वह भी नसीम को चाहता है। नसीम की मां उत्तर प्रदेश के जिला बस्ती की रहने वाली थी । दुर्भाग्य उसे मुंबई खींच लाया और यहां वेश्यागिरी पर उसे गुजारा करना पड़ता था । वह मुंबई के प्रख्यात या कुख्यात जम्सू दादा की रखैल भी रह चुकी है। नसीम का जन्म जस्सु दादा से ही हुआ था । इस प्रकार तो जम्सु दादा ही नसीम का बाप है। पर यहां तो कुत्तों की सी जिन्दगी है। वही जम्सु दादा अब उसे भी मां की तरह कबाब कोफ्ता और बिरयानी खिलाना चाहता है दूसरे शब्दों में नसीम (खुद अपनी बेटी) को भोगना चाहता है, पर इसीलिए नसीम उससे दूर-दूर भागती है और वह जम्सु दादा को बेइन्तिहां नफरत करती है । छः महीने पहले तक नसीम को न्यू यजदानी रेस्टोरां का आर्डर वाला हसनअली संभालता था, पर उसके चले जाने के बाद नसीम को फिर खाने के लाले पड़ रहे थे।

नसीम ने पिछले दो तीन दिन से कुछ भी खाया नहीं है। अन्न का एक भी दाना या गोश्त का एक भी टुकड़ा उसके भीतर गया नहीं है। ऐसे में एक दिन वह रामन्ना को मिलती है। रामन्ना उसको मुहब्बत करना चाहता है पर उन दिनों उसकी हालत भी बहुत पतली चल रही थी। उसके पास कान में केवल एक ''चौली'' थी । उन दिनों मुंबई में दो आने के सिक्के को जो चौकेर हुआ करते था, फुटपाथी लोग अपनी टपोरी लंग्वेज में ''चौली''

कहते हैं। रामन्ना नसीम से कहता है "उस दिन तो हम तुमेरेकु फकत उलफत करने को गया था, मगर अभी मोहब्बत भी हो गया है। पर सोचता है, तुम हमरे जिगर पर बिजली गिरायी तो भी कड़की में। क्या, आजकल अपना भी पोलपट्टी चल रिया है।"[६४]

यहाँ पर लेखक ने ऐसे दलित गलित वर्ग में भी जो उसे जीवन मूल्य है उनका चित्रण किया है। रामन्ना के पास फकत एक चौली है। वह नसीम को कहता है कि इससे तु पातल भाजी खा ले पर नसीम कहती है कि नहीं पहले वह उससे मुहब्बत करेगा बाद में उसी चौली से वे एक कोप चा और दो खारी बिस्किट ले साथ में खायेंगे। इसके बाद ये दोनों दादर के पीछे पाईपों में प्यार करने जाते हैं। जब नसीम पेटीकोट का नाड़ा खोलती है तब अमानक रामन्ना की नजर उसमें बंदे कुछ छेदवाले एक पैसे के सिक्कों पर पड़ती है और उसकी स्मृति में उसकी बहन करावा का चित्र उभरता है। वह भी अपने नाड़े में ऐसे पैसे बांधती थी। अतः नसीम से कहता है- "हमेरा जैसा डामिश लोग होने से ही मां-बहन का अस्मत का कोई वेल्यु कोई कीमत नहीं रखने का। एक कोप चा, दो खारी बिस्किट का वास्ते जिस्म का सौदा होने का थू है हमेरे पर...नस्सू हमेरे को माफ करना। बोलो हम तुम्हेरा भाई, तुम हमारा सिस्टर, हमारा करावा।"[६५]

यहाँ इस कहानी के समानान्तर करावा की कहानी भी आती है। करावा अपने और रामन्ना का पेट पालने के लिए जिस्म का सौदा करती थी पर रामन्ना को इस बात का पता नहीं था। एक दिन जब रामन्ना को इस बात का पता चल जाता है तब वह अपनी बहन को बुरी तरह से फटकारता है। उसके जवाब में करावा जो कहती है वह बड़ा ही दर्दनाक है। "दुनिया वाले मुझ पर थूंकने होगे लेकिन मैं तुम्हारे मुंह पर थूंकती हूं कि तुम्हारे जैसा भैंसे-हाथी सरीखा भाई होकर भी मुझे रोटियों के लिए तन का सौदा करना पड़ता है, मन का खून करना पड़ता है।"[६६] और ऐसा कहते हुए वह नागपुर एक्सप्रेस से कटकर आत्महत्या कर लेती है। औरत सबकुछ बरदाश्त कर लेगी पर अपने

भाई या पिता के सामने बेइज्जत नहीं होना चाहेगी। रामन्ना में गैरत हो न हो, करावा ऐसी स्थिति में अब जिन्दा नहीं रह सकती। और कहानी के अंत में रामन्ना के भीतर सोया हुआ अच्छा इंसान जाग उठता है और वह नसीम को अपनी बहन बना लेता है।

(९) हत्यारे :-

प्रस्तुत कहानी दलित-जीवन के एक दूसरे ही पहलू को हमारे सामने लाती है। इसमें इलाहाबाद का परिवेश है। इधर आजादी के बाद दलितों में से भी कुछ लोग आरक्षित कोटा, मेहनत-मशक्कत और कहीं-कहीं राजनीतिक नेताओं की तरह भ्रष्टाचार से भी कुछ पैसेवाले या धनवान हुए है। ऐसे ही एक दलित नेता है रामचरण केवट। चौधरी हरफुलचंद भी उनके नेता है नगर के केवटपुरा ''हरिजन समाज की मीटिंग हो रही थी। रामचरण केवट का लड़का शिवचरण हाईस्कूल की वैतरणी पार करने में सफल हुआ था। आज का यह कार्यक्रम उसी उपलक्ष्य में था। प्रदेश के भूतपूर्ण एम.एल.ए. बाबू संकटमोचन सिंह इस मौके को बुलाना चाहते हैं और एक दूसरा और अहम मुद्दा है रामचरण केवट का भैंरोवाली गली में अनधिकृत ढंग से खड़ा किया। तिमंजिला शानदार मकान, जिसे आप हवेली भी कह सकते हैं। यह मकान गैरकानूनी तरीके से खड़ा किया है। शहर का अफसर सूरजचंद भट्ट उसे जमीनदोस्त करने की पूरी तैयारी कर चुका है। उसके लिए कानूनी कारवाही भी हो चुकी है। रामचरण को बाकायदा नोटिस ''सर्व'' हो चुका है। पर प्रदेश के नेता लोग रामचरण को सही सलाह देने के बदले उल्टे उसे उकसाते हैं, इतना ही नहीं दूसरे दलित लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करने का भी नहीं चूकते। चौधरी हरफूलचंद अपने भाषण में कहते हैं : ''तो मैं कह रहा था कि आज मैं पहली बार भाषण बखानने को खड़ा नहीं हुआ हूं। आप लोगों को इस बात का पता होना चाहिए कि रेगड़पुरा और मोहल्ला चमरियान की जनरल मीटिंगों में दिये गये मेरे ब्यान अखबारों और एसेम्बली तक

हड़कम्प मचा चुके हैं। मौजूद ठाकुर संकटमोचप साहेब मेरी इस खुदमुख्तारी की गुस्ताखी को माफ करेंगे। मैं फिर उनकी तारीफ में आऊंगा, ये बताने के बाद कि आज की इस जनरल मीटिंग में सब हरिजन भाईयों के इकट्ठे होने का आखिर मकसद क्या है। मकसद जो है, सो आप लोग पहले से ही जानते हैं कि हमारे इस शानदार शहर के नाशुक्रा और नादिरशाही अफसर सूरजचंद भट्ट ने अपनी जिस नवाबशाही की तहत आप लोगों के सरताज साथी रामशरण केवटजी की भैरोंवाली गली में तैयारशुदा शानदार तिमंजला हवेली को गिरा दिये जाने की धमकी इस तरह से दी है, गोया कि हमारे हरिजन मर्दों के हाथों में कांच की चूड़ियां के अलावा और कुछ उठा सकने का हौंसला नहीं रहा।'' [६७]

इस प्रकार चौधरी हरफूलचंद तथा ठाकुर साहब ने केवट रामशरण तथा उनके हरिजन-साथियों में खूब हवा भरी, उन्हें खूब उकसाया। बिरादरी के नेता होने के नाते इन दोनों का कर्तव्य था कि वे राचरण को सही मशवरा देते, समझाते कि कानून के ऊपर कोई नहीं है, गलत काम हरहालत में गलत ही होता है, किन्तु बजाय इसके वे उन लोगों को और भी उकसाते है, उनकी भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं। क्योंकि इनको तो अपने स्वार्थ की रोटी सेंकनी थी और वोटों की खेती करनी थी। अत: जब सूरजचंद भट्ट अपने ''डिमोलिशन आपरेशन'' को अंजाम देने आ धमकता है, तब ये दोनों नेता ऐसे गायब हो जाते हैं जैसे गधे के सिर से सिंग। दूसरी तरफ भूमि-संबंधी कानूनों के जाने-माने एडवोकेट श्रीवास्तव साहब भी इस पक्ष में नहीं थे कि कोई असंवैधानिक उपाय काम में लाया जाए। वे रामचरण को समझाते भी हैं - देखो भाई, रामचरण, इस आदमी पर आन्दोलन जैसी चीजों का कोई असर नहीं होगा। न किसी मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री का दबाव ही कोई काम करेगा। ऐसे सिरफिरे अफसरों का सरकार भी कुछ नहीं कर सकती, जो कोयलरी में बैठकर भी बेदाग हों और ''रैजिग्रेशन'' को हर समय कलम की नोंक पर रखते हों। अरे, भई, जो अफसर चपरासी से सब्जियां मंगवा लेने

पर अपनी पत्नी को सार्वजनिक रूप से डांट सकता है और जुर्माना कर सकता है, उसको सिर्फ एक ही हस्ती रोक सकती है - और वह है मौत।.... और एक सरकारी अफसर की हत्या कर डालना इतना आसान नहीं, काफी जोखिम भरा काम है।[६८]

परन्तु रामचरण के मन रूपी फुग्गे में तो नेता लोगों ने हवा भर दी थी। वह भला श्रीवास्तव की बात क्यों मानने लगा। ''डिमोलिशन'' वाले दिन ताव में आकर वह पहले पुलिस पर फायरिंग करता है, उसके जवाब में पुलिस की ओर से भी फायरिंग होती है और बाप-बेटे दोनों मारे जाते हैं। उसमें रामचरण का आशास्पद बेटा शिवचरण भी बलि का बकरा बन जाता है। जबकि वह तो आखिरी समय पर अपने पिता को समझाने गया था - ''बाबू, बंदूक छोड़कर नीचे चले आओ । ई ससुर ठाकुर संकटमोचन और ताऊ हरफूलचंद चौधरी, दोनों नदारद है, दोनों धोखेबाज हैं..[६९] पर रामचरण अपने बड़बोलेपन में कह गया था कि बिल्डिंग को हाथ लगाने वाले को गोली से उड़ा न दिया, तो बाप का नहीं, हरामी का बेटा समझ लेना । अत: यह अपने बाप का बेटा भी फायरिंग की भेंट चढ़ गया ।

कहानी के अंत में चौधरी हरफूलचंद की घरवाली जब रामचरण की घरवाली रामरती को कहती है कि ''ई ससुर पुलिस लोगन का सत्यानाश होवे । य हत्यारे तेरी गिरस्थी उजाड़ दिये हैं।''[७०] तब रामरती बिलकुल सही कहती है - ''पुलिस वाले तो शिवचरण के बाप ने गोली चला बैठने के बाद गोली चलाये हैं। हमारे इनको तो सरकार ही नहीं मारी हैं, बाकि ई राक्षस ससुर संकटमोचन और तुम्हारे बुढऊ हरफूल चौधरी ने मरवाय दिये हैं।''[७१] इस प्रकार कहानी के अंत में यह साबित हो जाता है कि इन बाप-बेटों के वास्तविक हत्यारे कौन हैं ?

इस कहानी को पढ़कर अभी हाल में ही घटित (गुजरात में) एक घटना की स्मृति कौंध जाना स्वाभाविक ही होगा। वर्ष २००६ में प्रदर्शित ''फना'' फिल्म के संदर्भ में गुजरात के कुछ ''फण्डामेण्टालिस्ट'' लोगों ने

ऐसा माहौल पैदा किया कि राजकोट के एक व्यक्ति ने आत्मदाह कर लिया। मेरे नम्रमतानुसार इस घटना में भी हत्यारे उनको करार देना चाहिए जिन्होंने इस प्रकार का ''अंसवैधानिक'' वातावरण प्रदेश में पैदा किया था। इस कहानी के संदर्भ में हम निम्नलिखित मुद्दों को रेखांकित कर सकते हैं -

(१) यहाँ लेखक का दलित-विषयक विमर्श बिलकुल तटस्थ है। जो गलत है, वह हर हालत में गलत ही होता है, चाहे उसे कोई दलित करे या गैर-दलित।

(२) रामचरण के वास्तविक हत्यारे वे लोग हैं जो उसे गलत काम करने से रोकने के बदले उसे उकसाते हैं।

(३) हिंसा करनेवालों से हिंसा भड़काने वाले ज्यादा भयंकर किस्म के लोग होते हैं।

(४) यहाँ लेखक ने दलित तबके के ''नव धनिक वर्ग'' की कमजोरियाँ को भी उकेरा है। इन लोगों में एक प्रकार की प्रभुत्व-ग्रन्थि पैदा होती है, जिसके मूल ''लघुता-ग्रन्थि'' में ही होते है। ऐसे लोगों में दिखावा करने की प्रवृत्ति सविशेष पायी जाती है।

अन्य कहानियाँ :-

इन कहानियों के अतिरिक्त अहिंसा, विट्ठल, दैट माय फादर वेलजी, फर्क बस इतना है जैसी कहानियां भी आती है, जिनमें नगरीय परिवेश पाया जाता है।

''अहिंसा'' कहानी की बिन्दा भी ''महाभोज'' कहानी की शिवरती की भांति एक संघर्षशील और जुझारू औरत है। रात-दिन मेहनत मजदूरी करके अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींचती रहती है। पर उसे ''ग्रैंग्रिन'' हो जाता है। उसका पति जगेसर जैसे-तैसे पैसों का बंदोबस्त करके उसे शहर के किसी बड़े अस्पताल में ले जाता है। यहाँ हमारे देश के मेडीकल जगत की एक घिनौनी तस्वीर सामने आती है। वहाँ एक डाक्टर गुदौलिया है। जगेसर

आपरेशन के लिए मंगवाये पैसे डॉ. गुदौलिया को दे देता है। उसके बाद किन्हीं कारणों से डाक्टरों की हड़ताल हो जाती है और बिन्दा का आपरेशन नहीं हो पाता। उसमें उसकी मौत हो जाती है। सम्प्रति दिल्ली स्थित ''एइम्स'' (आल इण्डिया मेडीकल सायन्सिस) की हड़ताल के कारण दो-तीन मरीजों की मृत्यु के समाचार तो आ चुके हैं। इस कहानी का सबसे घिनौना और अमानवीय आयाम यह है कि डॉ. गुदौलिया एडवांस के पैसे हड़प जाता है और तब जगेसर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। फलत: वह डॉ. गुदौलिया की हत्या कर देता है।

''बिट्ठल'' कहानी का बिट्ठल एक दलित युवक है। कहानी में उसके संघर्ष के साथ मोहमयी मुंबई नगरी के सेठ -सेठानियों की यौन लिप्सा और उसे तृप्त करने के उनके तरीकों का भी यथार्थ वर्णन लेखक ने किया है। ''दैट माय फादर वेलजी'' मैं वेलजी सेठ की विलासिता के कारण कितनी दलित स्त्रियों को भिखारिन या पागल बन जाना पड़ता है उसका वर्णन ''एबसर्ड'' शैली में किया गया है। मां की बुरी हालत के कारण कहानी-नायक भी पागल हो गया है और मुंबई की ट्रेनों में पागलों की तरह प्रलाप करता रहता है। ''भय'' कहानी भी लगभग एब्सर्ड शैली की ही है, जिसकी विषय-वस्तु ''प्यास'' कहानी जैसी है। इसमें भी मुंबई में हो रहे मुर्दों के व्यापार को रेखांकित किया गया है। भीषण दरिद्रता के चित्र हैं। जिसमें पत्नी लोगों की नजरें बचाकर मृत पति के हाथ के पैसों को धीरे से खींच लेती है। ''फर्क बस इतना है'' एक व्यंग्यात्मक कहानी है, जिसमें रग्घू और सद्दू नामक दो मित्रों के माध्यम से तथाकथित उच्चवर्ग के लोगों की पोल खोली गई है और व्यंग्यात्मक ढंग से यह भी बताया गया है कि हमारे यहाँ लोग धर्म के नाम पर कैसे-कैसे गुण्डे और मवालियों को पालते हैं। एक बार धर्म की खोल ओढ़ लो फिर कुछ भी चलता है, इस कहानी का सद्दू गिरगिट की तरह रंग बदलता है। रग्घू एक ही सेठ-सेठानी के यहाँ रामागिरी करता है, जबकि सद्दू पहले ''पारिजात'' बंगले में रामा, फिर कुलीगिरी, फिर भिखारी

और अंत में बाबाजी बन जाता है। आखिर-आखिर में वह जब रग्घू को मिलता है तब मुंबई के कसी "मारूति-मंदिर में" पुजारी हो जाने की उसकी प्लानिंग वह रग्घू को बताता है। हर बार वह अपने वर्तमान के व्यवसाय की तारीफ करता है और पहले वाले में कोई नुक्स निकालता है। पर इसके माध्यम से लेखक ने मुंबई के भद्र-वर्ग की पोल-पट्टी खोली है और बताया है कि यह तथाकथित भद्र वर्ग भीतर से कितना खोखला और अश्लील और अभद्र है।

निष्कर्ष :-

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुँच सकते हैं -

(१) मटियानीजी की दलित संदर्भ वाली कहानियों में अधिकांश कहानियाँ ऐसी है जिनके कारण एक कहानीकार के रूप में उनका नाम है। इनमें कुछ उनकी कालयजी रचनाओं का समावेश होता है।

(२) मटियानीजी की दलित-संदर्भ की कहानियों को हम अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए दो वर्गों में रख सकते हैं-

(अ) कुमाऊं के परिवेश पर आधारित कहानियां और (ब) नगरीय परिवेश पर आधारित कहानियां। नगरीय परिवेश में मुंबई - दिल्ली जैसे महानगरों से लेकर इलाहाबाद, अल्मोड़ा, नैनीताल, बनारस जैसे नगरों का समावेश होता है।

(३) कुमाऊं के परिवेश पर आधारित दलित-संदर्भ की कहानियों में "घुघुतिया त्यौहार" "सतजुगिया आदमी", "नंगा", "प्रेममुक्ति", "चिट्ठी के चार अक्षर", "लाटी", "लीक" आदि कहानियों को परिगणित किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त "सावित्री", "नेताजी की चुटिया", "भंवरे की जात", "बर्फ की चट्टानें" आदि कहानियाँ हैं जिनमें किसी-न-किसी रूप में दलित संदर्भ प्राप्त होता है।

(४) नगरीय परिवेश पर आधारित कहानियों में "चील", "पत्थर", "प्यास", "महाभोज", "गोपुली गफूरन", "मिट्टी", "दो दु:खों का एक सुख", "एक कोप चा दो खारी बिस्किट", "हत्यारे" आदि कहानियों का समावेश किया जा सकता है। इन कहानियों के अतिरिक्त "अहिंसा", "विट्ठल", "दैट माय फादर वेलजी", "भय", "फर्क बस इतना है" जैसी नगरीय परिवेश की कहानियों में भी दलित-संदर्भ उपलब्ध होता है।

(५) इन कहानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि मटियानीजी की दलित-विमर्श विषयक दृष्टि तटस्थ एवं पूर्वाग्रह-रहित है। इनमें एक तरफ जहाँ दलित-शोषण की बात है, वहाँ दूसरी तरफ आजादी के बाद इस वर्ग में जो नयी चेतना उभरकर आ रही है उसका भी चित्रण मिलता है।

(६) कुमाऊं प्रदेश के जन-जीवन के साथ यहां उस मिट्टी की सोंधी खुशबू भी है। इनमें ऐसे दलित पात्र मिलते जिनमें मानवीय मूल्यों की भरमार है। कहीं-कहीं उनके अंध-विश्वासों का भी चित्रण है। दलित-वर्ग में पाई जाने वाली कमजोरियों को भी लेखक ने नहीं बख्शा है।

(७) नगरीय परिवेश में जहां हमने मुंबई के जीवन का चित्रण किया है, वहां मुंबई के उस जीवन को भी हमने दलित-जीवन के अंतर्गत ही रखा है जो झोंपड़पट्टी और फुटपाथों तथा पाईपों का है। यहां कोढ़ी है, भिखारी है, चोर-बदमाश-उचक्के, उठाईगिर और पाकेटमार हैं।

(८) इन कहानियों में जहां मटियानीजी ने तथाकथित ऊंची, संपन्न, अभिजात जातियों के भीतर के खोखलेपन और सडांध का चित्रित किया है, वहाँ मुंबई की झोपड़पट्टियों और फुटपाथों पर सड़ांध-भरा जीवन जी रहे लोगों में भी कहीं-कहीं ऊंचे मानवीय मूल्य पाए गए हैं।

(९) इन कहानियों में कहीं ऐसे पात्र मिल जाएंगे जिनमें कहीं बहुत भीतर खंगालने पर मनुष्य होने का अहसास बाकी है, तो कहीं ऐसे पात्र भी हैं जो मनुष्य होने की चेतना खो चुके हैं। लाख गरीबी और दरिद्रता के बावजूद

यहां कुछ ऐसे नारी पात्र है जो अपने मान-सम्मान और ''मरजाद'' के लिए जूझ रही है। ऐसी जुझारू और जीवटवाली नारियों में शिवरती, गनेशी, बिन्दा, कृष्णाबाई आदि को ले सकते हैं। इस प्रकार यहां जीवन के कीचड़ में खिले हुए कमलों के दर्शन हम कर सकते हैं।

*

संदर्भानुक्रम :-

(१) पहाड़ विशेषांक : पृ. ११-१२

(२) कहानी : घुघुतिया त्यौहार: बर्फ की चट्टानें/बड़ा संकलन/ पृ. ५६१

(३) से (८) : वही : पृ. क्रमश: ५६१, ५६२, ५६२, ५६२, ५५५, ५५८

(९) कहानी : अपना गांव : डॉ. मोहनदास नैमिशराय : चर्चित दलित कहानियां : सं. डा. कुसुम वियोगी : पृ. १०२-१०३

(१०) कहानी : वही : पृ. ११३

(११) कहानी : परनाम नेताइनजी : डा. रमणिका गुप्ता : कहानी -संग्रह : उपरिवत् : पृ. ६८-७३

(१२) कहानी : सतजुगिया आदमी : बर्फ की चट्टानें/बड़ा संकलन/: पृ. १३२

(१३) कहानी : बुध सरना कहानी लिखता है : बुद्धशरण हंस : कहानी संग्रह : चर्चित दलित कहानियां : पृ. २४

(१४) कहानी : सतजुगिया आदमी : पृ. १३२

(१५) द्रष्टव्य : कहानी : छूत कर दिया : डा. सूरजपाल चौहान : कहानी-संग्रह : उपरिवत् : पृ. ६३

(१६) कहानी : सतजुगिया आदमी : पृ. १३७

(१७) कहानी : नंगा : बर्फ की चट्टानें : पृ. १६१

(१८) वही : पृ. १६५

(१९) कहानी : प्रेतमुक्ति : कहानी संग्रह : एक दुनिया समानान्तर : सं. राजेन्द्र यादव :पृ. ३६९

(२०) आँसू : जयशंकर प्रसाद
(२१) कहानी : प्रेतमुक्ति : संकलन : उपरिवत् : पृ. ३७०-३७१
(२२) वही : पृ. ३७२
(२३) से (२४) : वही पृ. क्रमशः ३७५.३७५
(२५) कहानी : चिटठी के चार अक्षर : बर्फ की चट्टानें : पृ. ७७
(२६) से (२८) वही : पृ. क्रमशः ७७,७८,७९
(२९) कहानी : लाटी:सुहागिन तथा अन्य कहानियां : पृ. २२
(३०) से (३३) : वही : पृ. क्रमशः २३, २४, २६
(३४) द्रष्टव्य : वही: २९
(३५) कहानी : लीक : मेरी तैतीस कहानियाँ, पृ. १२७
(३६) से (३७) : वही: पृ. क्रमशः १२८, १३२
(३८) कहानी: सावित्री:बर्फ की चट्टानें : पृ. १७०
(३९) वही : पृ. १७४-१७५
(४०) कहानी : भंवरे की जात: बर्फ की चट्टानें : पृ. ५७-५८
(४१) कहानी : बर्फ की चट्टानें : संकलन-बर्फ की चट्टानें : पृ. ७१
(४२) वही : पृ. ७३-७४
(४३) कहानी चील : संकलन : त्रिज्या : पृ. १००
(४४) से (४५) : वही : पृ. क्रमशः १०३, १०३
(४६) प्रो. देसाई की काव्य-डायरी से
(४७) कहानी : प्यास : संकलन : त्रिज्या : पृ. १२३
(४८) से (४९) : वही: पृ. क्रमशः ११७, ११७
(५०) कहानी : महाभोज : भविष्य तथा अन्य कहानियाँ : पृ. १०७
(५१) से (५२) : वही : पृ. क्रमशः ९९, १०१
(५३) कहानी : गोपुली गफूरन : पापमुक्ति तथा अन्य कहानियां : पृ. ४८
(५४) से (५६) : वही: पृ. क्रमशः ४८, ५१, ५१
(५७) कहानी : मिट्टी : संकलन : त्रिज्या : पृ. १७४

(५८) से (६०) : वही: पृ. क्रमश: २६९, १७९-१८०, १७९

(६१) कहानी : दो दु:खों का एक सुख: बर्फ की चट्टानें : पृ. ५३७

(६२) वही : पृ. ५४५

(६३) सूखे सेमल के वृंतों पर : पृ. १०७

(६४) कहानी : एक के कोप चा : दो खारी बिस्किट: मेरी तैंतीस कहानियाँ : पृ. ८४

(६५) वही : पृ. ८७

(६६) वही : पृ. ८६

(६७) कहानी : हत्यारे : भेंड़ें और गड़रिये : पृ. १३७

(६८) से (७१) : वही : पृ. क्रमश: १४९-१५०,१५५,१५६,१५७